श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय : पुष्प ९०

राजस्थानकेसरी अध्यात्मयोगी श्री पुष्कर मुनिजी दीक्षा स्वर्ण जयन्ती के उपलक्ष्य में

पुस्तक : विमल विभूतियाँ

कवि अध्यात्मयोगी श्री पुष्कर मुनिजी महाराज

सम्पादक : श्री नेमीचन्दजी पुगलिया

प्रस्तावना · श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री

प्रकाशक : श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय
शास्त्री सर्कल, उदयपुर (राजस्थान)

प्रथम बार · २१, अक्टूबर १९७७
विजयदशमी

मुद्रक · श्रीचन्द सुराना के लिए
दुर्गा प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-४

मूल्य : दस रुपये मात्र

देता है इतिहास प्रेरणा
घटनाओं का घोष सुनाकर।
त्याग-तितिक्षा - सेवा - समता
साहस - सन्निष्ठा अपना कर ॥

आप वही बन सकते हैं जो
इन पृष्ठों में हुआ है अंकित।
'स्वयं स्वयं के निर्माता हम'
'पुष्कर' का विश्वास सुनिश्चित ॥

जो सचमुच में थे इकतारा
लाखों की नयनों के तारा,
जिसने निज को, पर को तारा,
महास्थविर श्रद्धेय परम थे,
समतायोगी गुरुवर तारा,
उनकी पावन स्मृतियों से मन
पुलकित है, है अन्तर जागृत।
चरणों में यह लघुकृति सविनय
'पुष्कर' मुनि करता है अर्पित !

प्रकाशकीय

जिस जाति, परम्परा, धर्म, समाज एवं राष्ट्र का इतिहास जीवित है, उसे कोई नही मिटा सकता। गौरवमय अतीत गौरवपूर्ण भविष्य का निर्माण करने में सक्षम होता है।

हम जिस वर्तमान में जी रहे हैं उसकी एक कड़ी अतीत, उज्ज्वल है, और एक कड़ी भविष्य आशापूर्ण है तो निस्संदेह वर्तमान प्रकाशमान और गौरवमय बन सकता है, सिर्फ निष्ठापूर्वक देखने-समझने और स्वीकारने की आवश्यकता है।

'विमल विभूतियां' मे जैन इतिहास की उज्ज्वल-प्रेरक घटनाओं का ऐसा सजीव चित्रण है कि इनके पढ़ने से उत्साह और शुभ भावो से हृदय तरंगित हो उठता है। न केवल इतिहास हमारे समक्ष चित्रमय बनकर उपस्थित हो जाता है, पर, उसकी प्रेरणाओं की ध्वनियाँ भी हमारे मन-मस्तिष्क में गूंजने लगती हैं, और देश-काल-के बंधनो से मुक्त एक सार्वभौम सार्वकालिक सत्य हृदय मे साक्षात् उतर आता है। गुरुदेव श्री पुष्कर मुनिजी महाराज के काव्य-चित्रण की यही तो खूबी है। वे गंभीर विद्वान होकर भी बड़ी सरल सुबोध वाणी मे बोलते हैं। सरस सुबोध भाषा मे लिखते हैं।

इतिहास गुरुदेव श्री का प्रिय विषय रहा है। यद्यपि गुरुदेव श्री ने अनेक पौराणिक चरित्रों का भी पद्यमय अंकन किया है, पर ऐतिहासिक चरित्रों पर उनका विशेष ध्यान केन्द्रित है। प्रस्तुत पुस्तक मे इतिहास के ३७ उद्‌बोधक तथा प्रेरक चरित्रो का गुम्फन हुआ है जो पाठकों को, तथा श्रोताओं को आल्हादित करेगा।

हमारे स्नेहीबन्धु श्री नेमीचंद्र जी पुगलिया ने इन काव्यों का सम्पादन कर इनमे भाषा-सौष्ठव के साथ-साथ प्रेरक तत्त्व को भी उजागर करने का सद्‌प्रयत्न किया है। हम साहित्य-सेवी श्रीमान् पुगलिया जी के इस बौद्धिक श्रम का आदर करते हैं।

पुस्तक के प्रकाशन में श्रीमान् स्व० अमरचन्द जी साहब लोढा (बेंगलूर) के उत्साही परिवारी-जनो ने अर्थ-सहयोग प्रदान किया है तथा मुद्रण साज-सज्जा आदि में श्रीयुत श्रीचन्द जी सुराना का हार्दिक सहयोग प्राप्त हुआ है। हम हृदय से आभार व्यक्त करते हुए अधिकाधिक सहयोग की कामना करते हैं।

—मंत्री

तारक गुरु जैन ग्रन्थालय

प्रस्तावना

इतिहास मानव जाति की सबसे बडी अनमोल सम्पदा है, अतीत की महत्त्व-पूर्ण घटनाओ और चली आ रही परम्परागत धारणाओ का यथार्थ चित्रण है। भारतीय धर्म, दर्शन, और समाज की ऐतिहासिक परम्परा अत्यधिक समृद्ध रही है। यह एक ज्वलन्त सत्य है कि व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि को, व्यक्ति की अपेक्षा समाज को अत्यधिक महत्त्व देने के कारण भारतीय परम्परा मे इतिहास का जिस प्रकार लेखन अपेक्षित था, उस रूप मे न हो सका। किन्तु इतिहास लेखन के विविध स्रोत किसी न किसी रूप मे सुरक्षित अवश्य रहे हैं। महाकाल के झझावात मे भी वे स्रोत लुप्त नही हुए हैं। महाभारत के सुप्रसिद्ध लेखक वेदव्यास ने लिखा है—'इतिहास की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए। धन आता है और जाता है। धन के नष्ट होने पर कोई नष्ट नही होता, पर इतिहास के विनष्ट होने पर उसका विनाश निश्चित है।[1]

एक अन्य विचारक ने लिखा है—यदि किसी जाति, समाज या राष्ट्र को नष्ट करना हो, उसे अपनी गौरवगरिमा को नष्ट करके दुर्भाग्य के दुर्दिन देखने के लिए सर्वनाश के महागर्त मे गिराना हो तो अन्य कुछ करने की आवश्यकता नही, बस, एक ही कार्य किया जाय कि उसका इतिहास उससे छीन लिया जाय। पूर्वजो के सस्मरणो पर ब्रेक लगा दिया जाय। और इतिहास के वे स्वर्णपृष्ठ जिसमे उसके पूर्वजो की गौरव गाथाएँ अकित हैं, उनको विपरीत रूप से उपस्थित किया जाय जिससे वह देश, समाज व राष्ट्र या धर्म पतन की ओर सहज ही अग्रसर हो जायेगा।

जब कोई देश, राष्ट्र, समाज या धर्म हीन व दीन भावनाओ से ग्रसित हो जाता है, अपने महत्त्व को विस्मृत हो जाता है तो उसे प्रतिपल प्रतिक्षण यही सुनाया जाता है कि तू कुछ नही है। तेरे पूर्वजो मे किंचित् मात्र भी सामर्थ्य नही था; उन्होने अपने जीवन मे कोई भी महत्त्वपूर्ण कार्य नही किया। तो अवश्य ही उस देश, राष्ट्र, जाति, समाज और धर्म की परम्पराएँ छिन्न-विच्छिन्न होने लगेंगी। उसके रक्त की ऊष्मा ठण्डी पड जाने से वह उन्नति के स्थान पर अवनति की ओर अग्रसर होगा। मनोविज्ञान का भी यह नियम है कि जो व्यक्ति हीन भावनाओ के कीटाणुओ से

---

१ वृत्त यत्नेन सरक्षेत् वित्तमायाति याति च।
अक्षीणो वित्तत क्षीण वृत्ततस्तु हतो हत। —वेदव्यास (महाभारत)

आक्रान्त हो जाता है वह क्षय रोगी की तरह अन्दर ही अन्दर से खोखला बन जाता है। यदि उसे इस रोग से मुक्त होना है तो अपने पूर्वजो के पवित्र चरित्र से प्रेरणाएँ ग्रहण करनी होगी और उसे समझना होगा उन पराक्रमी पूर्वजो का ऊर्जस्वल रक्त अब भी तेरी धमनियो मे प्रवाहित हो रहा है। महात्मा ईसा ने अपने उपदेश मे कहा —तुम यह मत सोचो कि ससार मे हमारा कोई अस्तित्व नही। तुम इस सृष्टि के नमक हो। ससार का स्वाद बदलने की क्षमता तुममे है।' बेकन का मन्तव्य है कि इतिहास पढने से मानव बुद्धिमान बनता है। राष्ट्रपिता महात्मा गाधी ने लिखा है कि इतिहास स्वदेशाभिमान सिखाने का सबसे बड़ा साधन है। गिब्बन का यह लिखना सर्वथा अनुचित है कि इतिहास मानव के अपराध, मूर्खताओ और दुर्भाग्यो के रजिस्टर के अतिरिक्त और कुछ नही।[२] क्योकि इतिहास मानव-जीवन को उन्नत और समुन्नत बनाने का महत्त्वपूर्ण साधन भी है। वह उन लड़खडाती जिन्दगियो मे अभिनव जीवन का सचार करता है, भूले भटके जीवनराहियो का पथ-प्रदर्शन करता है। अपने अतीत की गौरव गाथाओ को स्मरण कर उसमे अभिनव शौर्य और प्रबल पराक्रम का सचार होता है। और वह विश्व को अपने प्रदीप्त तेज से आलोकित करता है। वस्तुत. इतिहास धर्म और समाज को जीवित रखने वाली सजीवनी बूटी है। इतिहास क्या है ? इस प्रश्न पर चिन्तन करते हुए पाश्चात्य विचारक कार्लाइल ने लिखा है— जीवनियाँ ही सच्चा इतिहास है।[3] उन जीवनियो मे महापुरुषो की अमर गाथाएँ उट्टकित होती हैं, जो जन-जन के अन्तर्मानस मे सयम-साधना, तप-आराधना, और मनोमथन की प्रबल प्रेरणाएँ प्रदान करती हैं साथ ही कर्तव्य मार्ग मे जूझने के लिए सन्देश भी देती हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ मे जैन इतिहास की उन विमल विभूतियो के जीवन की वे गाथाएँ चित्रित की गयी हैं जिनमे प्रेरणा है, भावना है और साधना है। सम्राट उदायी तथा द्रौपदी के चरित्र मे क्षमा की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। क्षमा कायरो का नही, किन्तु वीरो का भूषण है। क्षमा वही व्यक्ति कर सकता है जिसके जीवन मे तेज है, ओज है। कवि ने कहा है—

'क्षमा धर्म की साधना—करते व्यक्ति समर्थ।
शक्तिहीन रखते क्षमा, उसका क्या है अर्थ ?
मार सके मारे नहीं, उसका नाम मरद्द।
जिसकी हो असमर्थता, उसकी कृतियाँ रद्द॥

---

२ History is little more than the register of Crimes, follies and misfortunes of mankind—Gibbon.

३ "Biography is the only true History"—Carliyle

क्षमा बड़े ही कर सकते हैं, क्षुद्र क्षमा कब कर पाते।
निर्बलता से पिसे हुए नर, बड़-बड़ करते मर जाते॥

आचार्य सय्यभव के जीवन मे सत्य-तथ्य को जानने की तीव्र जिज्ञासावृत्ति थी। जिज्ञासा ही दर्शन की जननी है। बिना जिज्ञासा के व्यक्ति सत्य को प्राप्त नहीं कर सकता। धर्म का सही मर्म वही समझ सकता है जिसके अन्तर्मानस मे प्रबल जिज्ञासा है। कवि ने सत्य ही कहा है—

"धर्म धर्म कहते सभी, धर्म धर्म में फर्क।
मर्म धर्म का समझ लो, करके तर्क वितर्क॥"

बालर्षि मणक के जीवन मे एक अनूठी विशेषता है कि वह लघु वय में पिता आचार्य सय्यभव के पास पहुँचता है और आचार्य सय्यभव उसके अल्प जीवन को जानकर दशवैकालिक का निर्माण करते हैं और उस आगम मे जीवविद्या, योगविद्या जैसे महत्त्वपूर्ण विषयो की चर्चा की गयी है जिससे श्रुत के अध्ययन मे आचार्यों को परिवर्तन करना पड़ा। पहले आचारांग के बाद उत्तराध्ययन सूत्र पढ़ा जाता था, किन्तु दशवैकालिक के निर्माण के पश्चात् दशवैकालिक के बाद उत्तराध्ययन का अध्ययन किया जाने लगा।[४] क्योंकि दशवैकालिक आचाराग से सरल और सुगम था। पहले आचाराग के शस्त्रपरिज्ञा अध्ययन को अर्थत. पढे बिना श्रमण-श्रमणियो को महाव्रतो की विभाग से उपस्थापना नही दी जाती थी, किन्तु दशवैकालिक का निर्माण हो जाने के पश्चात् उसके चतुर्थ अध्ययन को जानने के बाद महाव्रतों के विभाग की उपस्थापना की जाने लगी।[५] कवि ने मणक की महत्ता का चित्रण किया है—

अल्पावधि में कर लिया, आत्मा का कल्याण।
श्री बालर्षि मणक का, माननीय है स्थान॥

'जीवन के रग' मे महामात्य शकडाल और वररुचि के जीवन प्रसग को चित्रित किया गया है। जीवन मे कभी उन्नति होती है और कभी अवनति होती है। वह एक झूले की तरह जो कभी ऊपर और कभी नीचे आता रहता है। इसे कवि ने बहुत ही सुन्दर रूप से प्रस्तुत किया है—

---

४ आयारस्स उ उवरिं उत्तरज्झयणा उ आसि पुव्व तु।
दसवेआलिय उवरिं इयाणि किं ते न होती उ।
—व्यवहार, उद्देशक ३, भाष्य, गा० १७६ (मलयगिरिवृत्ति)

५ (क) व्यवहार भाष्य, उ० ३, गा० १७४
(ख) व्यवहार भाष्य गा० १७४ (मलयगिरि वृत्ति)

"क्या से क्या होता घटित, अघटित सारा कार्य।
इसीलिए अध्यात्म पर, बल देते जन आर्य॥
बादल प्रतिपल में यथा, बदला करते रंग।
रंग बदलता देखिए, अंगी का निज अंग॥"

श्रुतकेवली भद्रबाहु जैन इतिहास के एक ज्योतिर्धर नक्षत्र हैं। श्रुतकेवली परम्परा मे वे पंचम श्रुतकेवली हैं, चतुर्दश पूर्वधर हैं। इसके पश्चात् अन्य कोई चतुर्दश पूर्वी नही हुआ, अतः वे अन्तिम श्रुतकेवली हैं। आपका श्रुतज्ञान अतीव निर्मल और व्यापक था। मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त आपके अनन्य भक्त थे। डा० हरमन जेकोबी, डा० राइस, डा० स्मिथ, डा० काशीप्रसाद जायसवाल, प्रभृति विज्ञ चन्द्रगुप्त को जैन सम्राट मानते हैं। 'तिलोय पण्णत्ति' ग्रन्थ मे आचार्य भद्रबाहु के पास चन्द्रगुप्त के दीक्षित होने का भी उल्लेख है। सम्राट चन्द्रगुप्त के द्वारा देखे गए सोलह सपनो का फल भद्रबाहु ने बताया जिसमे पचमकाल की भविष्यकालीन स्थिति का दिग्दर्शन था। उन्होने 'उवसग्गहर' 'दशाश्रुत स्कन्ध' 'बृहत्कल्प, व्यवहार' 'कल्पसूत्र' तथा निर्युक्ति साहित्य का निर्माण किया। कवि ने बहुत ही संक्षेप मे उनकी सभी विशेषताओ पर प्रकाश डाला है।

महायोगी स्थूलिभद्र जैन इतिहास के ही नहीं किन्तु विश्व इतिहास मे उनकी जैसी निर्मल आत्मा मिलना कठिन है। उनके जीवन रत्न का हर कोना अद्भुत है, स्वर्णिम आभा से जगमगाता है। श्वेताम्बर मगलाचरण साहित्य मे श्रमण भगवान महावीर और गौतम के पश्चात् तृतीय मगल के रूप मे स्थूलिभद्र का उल्लेख है जो उनकी गौरवगरिमा का बोलता हुआ भाष्य है।

आर्य वज्रस्वामि, आचार्य हरिभद्र, सिद्धसेन दिवाकर, रत्नाकर सूरि, आचार्य हीरविजय जी, फक्कड़ आनन्दघनजी आदि सभी के चरित्रो मे अद्भुत प्रेरणाएँ हैं, जिनको पढते समय पाठक झूमने लगता है। उसे अपना सुनहरा अतीत स्मरण हो आता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता हैं अध्यात्म योगी राजस्थानकेसरी उपाध्याय पण्डित प्रवर श्री पुष्कर मुनिजी महाराज। आप स्थानकवासी समाज के एक देदीप्यमान जगमगाते सितारे हैं। ध्यान-योग तथा साधना के क्षेत्र मे आपकी विशिष्ट उपलब्धि है। आप मूर्धन्य मनीषी, गहन तत्त्वज्ञानी, ओजस्वी प्रवक्ता, सफल लेखक और श्रेष्ठ कवि हैं। आपश्री की कविताओ मे ओज है, माधुर्य है, और जीवन की प्रबल प्रेरणा है। प्रवचन के मध्य जब आपश्री स्वरचित पद्य, चरित्र आदि का गायन करते हैं तो एक अद्भुत समा बँध जाता है। आपश्री की कविताओ की भाषा सरल है, सरस है और भाव गम्भीर है।

प्रस्तुत ग्रन्थ मे पूज्य गुरुदेव श्री के द्वारा समय-समय पर रचित ऐतिहासिक चरित्रो का यह सकलन-आकलन है। इन चरित्रों का भौतिक भक्ति के युग मे पले-पुसे मानवो के लिए प्रबल प्रेरणाएँ हैं, और कर्तव्य मार्ग में निरन्तर आगे बढ़ने का सन्देश है। इन कविताओं ने मेरे मन को लुभाया है और पाठकों के दिल को लुभाने मे ये पूर्ण सक्षम हैं।

इस ग्रन्थ का प्रकाशन श्रद्धेय सद्गुरुवर्य की दीक्षा स्वर्ण जयन्ती के मगलमय अवसर पर हो रहा है। अन्य कविता साहित्य भी प्रकाशित करने की योजना है जो शीघ्र ही मूर्त रूप ग्रहण करेगा।

प्रस्तुत ग्रन्थ के सम्पादक कविवर्य नेमीचन्दजी पुगलिया हैं जो जैन समाज के एक जाने-माने लेखक तथा कवि हैं जिन्होने अत्यन्त स्नेह-सद्भावना के साथ इसका सम्पादन किया है। सम्पादन बहुत ही सुन्दर हुआ है।

मुझे आशा ही नही अपितु दृढ विश्वास है कि प्रस्तुत ग्रन्थ जन-जन के मन में अपना आदरणीय स्थान प्राप्त करेगा और इसका स्वाध्याय कर प्रबुद्ध पाठक अपने जीवन को उन्नत बनायेंगे।

—देवेन्द्र मुनि

जैन स्थानक
चिकपेठ, बेंगलोर
दि २१-१०-७७
विजयदशमी

प्रस्तुत ग्रन्थ के उदार अर्थ सहयोगी

स्व० सेठ श्री अमरचन्द जी साहब लोढ़ा : एक परिचय

भारतीय सस्कृति मे उसी जीवन का महत्व है जिसका जीवन सूर्य की तरह प्रकाशित और चन्द्र की तरह सौम्य है। वैज्ञानिक दृष्टि से प्रति मिनट साठ व्यक्ति मरते है और नब्बे व्यक्ति जन्म लेते है, पर उन्हे कोन स्मरण करता है? जिनका जीवन दीप्तिमान होता है वही जीवन जन-जन के लिए पथ-प्रदर्शक होता है।

सुश्रावक धर्मप्रेमी सेठ अमरचन्द जी लोढा का जीवन एक आदर्श जीवन था, जिन्होने अपने जीवन मे अर्हत् धर्म की साधना की और तप, त्याग, दान का ज्वलन्त आदर्श उपस्थित कर दिनाक २९ मई १९७७ की अर्द्ध रात्रि मे सथारा सहित स्वर्गवासी हुए।

आपकी जन्म स्थली राजस्थान की वह पुण्यभूमि रही, जहा वीर भामाशाह जैसे दानवीरों ने अपने नाम को रोशन किया, महाराणा प्रताप जैसे वीरो ने शौर्य का प्रदर्शन किया, मीरा जैसी भक्त कवियत्रियो ने भक्ति की सरस सरिता प्रवाहित की, उसी पुण्यभूमि के "वर" गाव मे आपका जन्म हुआ। आपके पूज्य पिता श्री का नाम कुन्दनमल जी था और मातेश्वरी का नाम चुन्नीबाई था। वर से व्यवसाय हेतु आपश्री अठारह वर्ष की युवावस्था मे कर्नाटक के मुख्य नगर बेंगलोर मे आये तथा प्रामाणिकता तथा स्नेह सौजन्य से व्यवसाय प्रारम्भ किया और एक प्रतिष्ठित व्यापारी के रूप मे ख्याति प्राप्त की।

आपका पाणिग्रहण ब्यावर के सन्निकट कोटड़ा ग्राम मे, श्रेष्ठिप्रवर जालमचन्द जी आंचलिया की सुपुत्री सुगुणीबाई के साथ सपन्न हुआ। सुगुणी बाई धमपरायणा, सरल हृदया, तथा वात्सल्य की प्रतिमूर्ति हैं। तप, जप व दान आदि सद्गुणो से उनका जीवन पुष्प सदा महकता रहता है। उन्होने अपने जीवन मे उत्कट तप की साधना की है। दो बार वर्षीतप तथा अनेकों बार ओली तप की आराधना की और मासखमन कर तप पर एक स्वर्ण शिखर भी चढा दिया। आपका गार्हस्थिक जीवन बडा ही मधुर तथा सयमयुक्त रहा। आपके दो पुत्र है श्रीमान जीवराज जी और विजयराज जी। दोनो मे राम और लक्ष्मण की तरह प्रेम है। पिता के गौरव को चारचाँद लगाने वाले दोनो ही भाई धर्मनिष्ठ हैं। आपके छ पुत्रिया है—चम्पाबाई, बदामबाई, सुभद्राबाई,

चूकीवाई, शान्तावाई और पदमावाई। सभी का पाणिग्रहण भी योग्य स्थानों पर सम्पन्न हुआ है।

श्री अमरचन्द जी साहव का जीवन प्रारम्भ से ही धर्मरत था। जीवन की सान्ध्य वेला मे जव शरीर पर व्याधि ने आक्रमण किया तव आपने अपने सुपुत्रो से कहा कि राजस्थानकेसरी उपाध्याय प० प्रवर गुरुदेव श्री पुष्कर-मुनि जी महाराज के दर्शन हेतु मुझे ले चलो। आप शिमोगा भद्रावती में दर्श-नार्थ उपस्थित हुए और आठ दिन तक निरन्तर सेवा करते रहे। आपकी भावना दूज के चाद की तरह निरन्तर वढती रही और पूज्य गुरुदेवश्री के आदेश से विभिन्न सस्थाओ तथा दीन एव अपग आदि व्यक्तियों को दिल खोल कर सहायता प्रदान की।

पूज्य गुरुदेव उपाध्याय पुष्करमुनि जी म० के प्रति उनके मन मे गहरी निष्ठा थी और आज भी उनके सुपुत्रों की तथा पूरे परिवार की गुरुदेवश्री के प्रति अपार आस्था है। प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन में दोनो सुपुत्रो ने पिताश्री की स्मृति मे अर्थ-सहयोग प्रदान कर अपने उदार हृदय का परिचय दिया है। अत हम सस्था की ओर से उनका हार्दिक आभार मानते है और साथ ही यह मगल कामना करते है कि धर्म के प्रसाद से वे हर तरह से विकास करे। समाज मे उनका नाम और काम सदा स्मरणीय वने। उनसे समाज को वहुत ही आशा है। आपश्री का व्यवसाय वेगलोर मे अलसूर वाजार में—

के० अमरचन्द जीवराज, न० ८४, जी० नं० १० स्ट्रीट,
अलसूर, बेंगलोर-८"

मे है और आध्रप्रदेश की तीर्थस्थली श्री कालहस्ती मे भी—

"विजयराज पारसमल एण्ड क० नगरी स्ट्रीट, कालहस्ती"

के नाम से है।

आशा है कि भविष्य मे भी आपका हार्दिक सहयोग हमे समय-समय पर उपलब्ध होता रहेगा जिससे हम उत्कृष्ट साहित्य प्रकाशित करते रहेगे। इसी आशा के साथ।

—चुन्नीलाल चानणमल धर्मावत
कोपाध्यक्ष
श्री तारक गुरु, जैनग्रन्थालय
उदयपुर

पुण्य स्मृति :
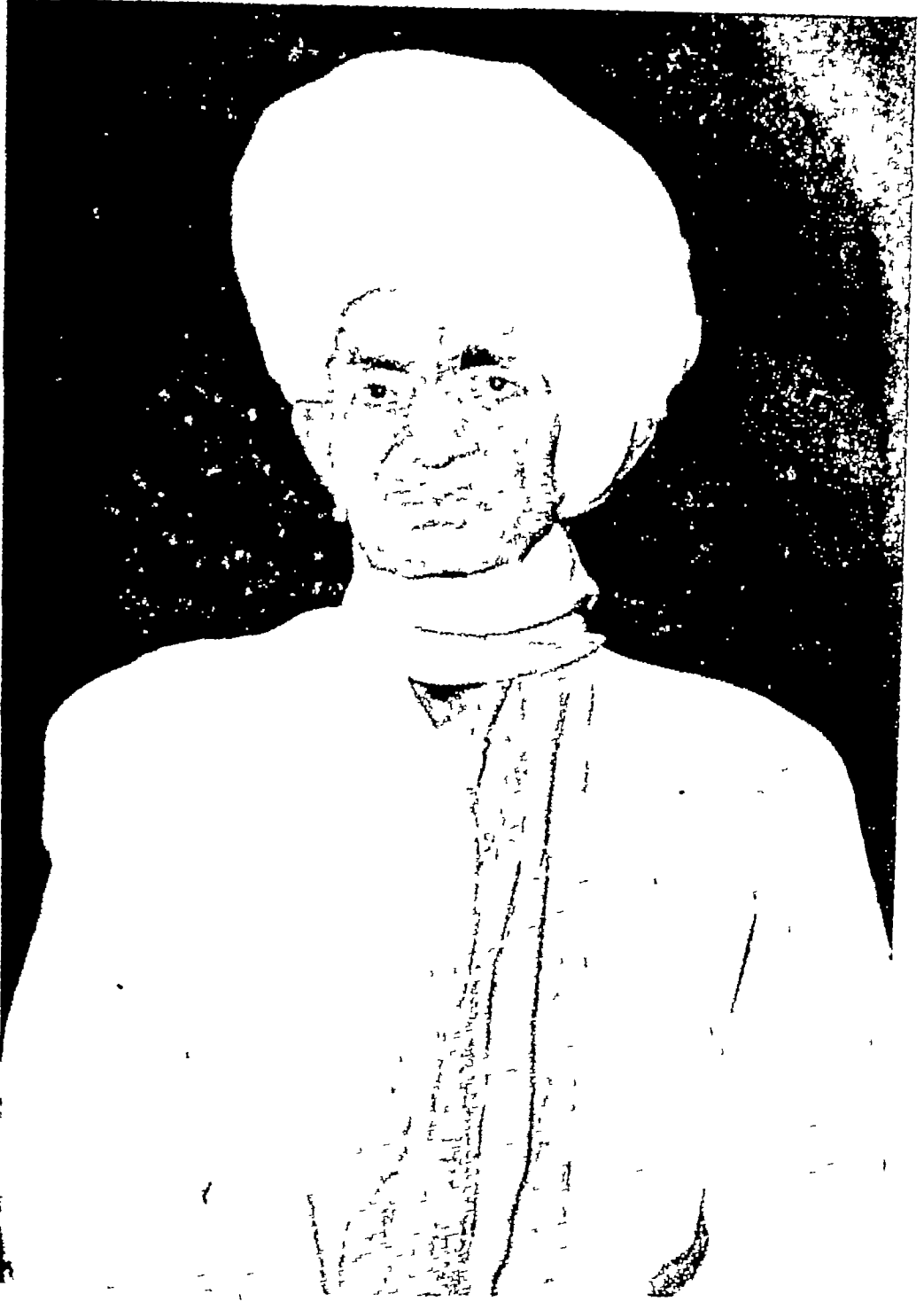
स्व० सेठ श्री अमरचन्द जी लोढा, वेगलूर

(स्वर्गवास दिनांक २९ मई १९७७)

अनुक्रमणिका

1

क्षमावीर सम्राट उदायी

दोहा

क्षमा का महत्व—

क्षमाधर्म की साधना- करते व्यक्ति समर्थ ।
शक्तिहीन रखते क्षमा, उसका क्या है अर्थ ? ॥
मार सके मारे नही, उसका नाम मरद्द ।
जिसकी हो असमर्थता, उसकी कृतियाँ रद्द ॥
नही भावना भी जगे, लेने को प्रतिशोध ।
उस नर ने पाया सही, सहिष्णुता का बोध ॥
नही क्रोध का कर रहा, वाणी में उल्लेख ।
क्षमाधर्म का पा लिया, उसने सही विवेक ॥
सपने में भी शत्रु पर, उठा न जिसका अंग ।
चढा उसी नर पर नया, क्षमा धर्म का रंग ॥
क्षमाशूर करते क्षमा, ओछे नर उत्पात ।
श्री हरि के उर में न क्या, भृगु ने मारी लात ? ॥
श्रमण वेप ले शत्रु ने, लिया पितृ-प्रतिशोध ।
नृपति उदायी ने किया, किंचित् मात्र न क्रोध ॥

श्री तीर्थंकर गोत्र का, किया नृपति ने बंध ।
क्षमा-साधना ने दिया, शिव सच्चिदानन्द ॥
रोमांचित होते सभी, सुनकर यह इतिहास ।
वर्तमान को मिल रहा, 'पुष्कर' नया प्रकाश ॥

राधेश्याम

उदायी के पूर्वज—

मगधराज्य की भूमि मनोहर, जहाँ हुए श्रेणिक सम्राट ।
निखरा था प्रत्येक क्षेत्र में, जिनका श्रुत व्यक्तित्व विराट ॥
क्रूर कारनामे कूणिक के, देख नृपति ने अंत किया ।
अशुभायुष्य बधा था पहले, उससे, ऐसा पंथ लिया ॥
राजगृह से चपा मे जा, कूणिक ने मन शांत किया ।
दु:खों की स्मृतियो ने ही इस, शांत चित्त को क्लान्त किया ॥
कूणिक पुत्र उदायी नृप ने, अब संभाला सिंहासन ।
च्यवन देवताओ का होता, रहते वे ही देव-भवन ॥

उदायी की महिमा—

आततायियो को दुखदायी, स्वजनो को सुखदायी था ।
शक्तिमान धीमान ज्ञान का, नव्य निधान उदायी था ॥
गुणानुरागी त्यागी भागी, बहुत न्यायप्रिय सक्रिय आप ।
श्रेष्ठ शौर्य औदार्य आर्यता, से बढाता है पुण्य प्रताप ॥
परंपरागत नीति - धर्म का, ज्ञान नृपति ने था पाया ।
गहरे वृक्षो की होती है, गहरी शीतलतम छाया ॥
महावीर प्रभु के प्रवचन का, चढा हुआ था उस पर रंग ।
बहुत ध्यान से सुनने लायक, नृप जीवन का एक प्रसग ॥

नई राजधानी—

पितृ - विरह की विपुल वेदना-शांत न होने देती मन ।
सभी मंत्रियों स्वजनों ने मिल, दिया नृपति को यह चिन्तन ॥
राजगृह से चपानगरी, चंपा से अब और कहीं ।
नई राजधानी बन जाये, कह सकता है कौन नहीं ॥
ज्यों-ज्यों समय निकलता जाता, त्यों-त्यो भूला जाता शोक ।
अथवा स्थानान्तर होने से, अन्तर बनता स्वतः अशोक ॥
शोकनिवृत्ति किया करता है, लोगों से मिलना-जुलना ।
नहीं साधनो की की जाती, एक-दूसरे से तुलना ॥
भूपति की इच्छाओं को ही, सचिव दिया करते है रूप ।
इसीलिए ही राजाओं को, माना जाता देव - स्वरूप ॥

स्थान की खोज—

विशेषज्ञ नैमित्तिक निकले, स्थान खोजने को उपयुक्त ।
सकृत् सूक्त समझ का सूचक, पुनः बोलना ही पुनरुक्त ॥
गंगा तट पर पहुँचे सारे, देखा दृश्य विचित्र वहां ।
सुन्दर[1] पुष्पों से आच्छादित, फलद पाटली खडा जहां ॥
नीलकंठ (चाप) पक्षी बैठा है करता कुछ भी नहीं प्रयास ।
उसके मुख मे कीट - पतगे, गिरते आकर कर आयास ॥
वयोवृद्ध नैमित्तिक बोला, देखो कैसा स्थान भला ।
भरा जा रहा उदर विहग का, किये बिना ही क्रिया-कला ॥

---

१ ते चिन्तयन्निहोद्देशे, पक्षिणोस्य यथामुखे ।
कीटिका स्वयमागत्य, निपतन्ति निरतरम् ।३८।
तथास्मिन्मुत्तमे स्थाने, नगरे पि निवेशिते ।
राज्ञ पुण्यात्मनोऽमुष्य, स्वयमेष्यन्ति सम्पद ।३९। —परिशिष्ट पर्व-सर्ग-६

शकर कण्ठस्थित फणधारी, नही गरुड से भी डरता ।
स्थान-स्थान की महिमा भारी, बेचारा नर क्या करता ।।

शुभ संकेत—

यहाँ राजधानी होने से, पुण्यवान राजा के पास ।
स्वत सपदाए आयेगी, करना होगा नही प्रयास ।।
गुणी साहसी पुरुप नृपति के, निकट जुटेगे अपने आप ।
नीलकण्ठ पक्षी की घटना, शुभ सकेत दे रही साफ ।।
सभी साथियो ने अनुमोदन, किया एक स्वर से इसका ।
क्या न एक जुटता कर देती, एक बार अमृत विष का ।।

निवेदन और निर्माण—

नम्र निवेदन किया नृपति से, नीलकंठ की घटना का ।
लघु इतिहास यही मिलता है, वर्तमान में पटना का ।।
नरपति का आदेश प्राप्त कर, लगे वसाने शहर नया ।
सुरुचि ढग से उसे सजाने - हेतु सभी कुछ किया गया ।।

दोहा

उसी वृक्ष के नाम पर, रखा नगर का नाम ।
वसा पाटलीपुत्र पुर, श्री-ह्री-धी-का धाम ।।

राधेश्याम

चारों ओर बना परकोटा, सुन्दर-चौसठ दरवाजे ।
आवाजे प्रहरी देते है, मानो बजते यश बाजे ।।
दो सौ गज चौड़ी विशति गज, गहरी खाई चारों ओर ।
जिसकी आवश्यकता होती उसी वस्तु पर लगता जोर ।।
सुन्दर भवन भवनवासी नर, सुन्दर तर-सुन्दरतम है ।
सुन्दरता को सुन्दरता से, रखने का यह उपक्रम है ।।

वसी ऋद्धियां वसी सिद्धियाँ वसी वृद्धियां भी सानन्द ।
वसा लाभ अमिताभ और शुभ अशुभ शकुन ग्रह सारे बंद ॥
बाजारों की विशालता में, कमी न कोई आने दी ।
पूर्ण काम करने वालों की, नहीं शिकायत जाने दी ॥
क्रय की धूम-धूम विक्रय की, शोभा है बाजारों की ।
क्रय-विक्रय स्थिति सुदृढ़ बनाते दुनिया के व्यापारों की ॥
दयाधर्म के प्रतिपालक नर, दृढ़धर्मी सुख से बसते ।
जब भी देखो तब भी उनके मुख मिलते हँसते-हँसते ॥
धन से सुखी, सुखी तन मन से, सुखी स्वजन गन से सारे ।
वन-उपवन से सुखी भवन से, सुखी सखाओं के प्यारे ॥
नृपति उदायी के शासन में, फैला था सुख का साम्राज्य ।
व्यसन बुराई अनधिकार को, माना गया सर्वथा त्याज्य ॥
दुष्टो को दडित कर देना, नही नृपति ने माना दोष ।
शिष्टों को मडित कर देना, भूपति ने माना संतोष ॥

वैर से वैर—

एक आततायी राजा को, किया राज्यच्युत विजित बना ।
विजितात्मा को अंतरमन में, होता ही है कष्ट घना ॥
शोकाकुल उस राजा का बस, आखिर में प्राणान्त हुआ ।
उसके ज्येष्ठ पुत्र का मानस वैरभाव से भ्रान्त हुआ ॥
बना लगाने नई योजना, लेने को अपना प्रतिशोध ।
प्रतिशोधक के मन में रहता, प्रतिपल उग्र उग्रतम क्रोध ॥

चंडप्रद्योत का चातुर्य—

मालवपति की चरण-शरण, कर ग्रहण सुनाई सकल व्यथा ।
मालवपति मगधाधिप की थी, बहुत पुरानी वैर-प्रथा ॥

रहो हमारी सीमा में सुख - पूर्वक राजकुमार ! सदा ।
बदला लेने की घटना में, हम न करेंगे पार्ट अदा ।।

वैर हमारा हम निपटेंगे, हमको क्यों उकसाते हो ।
ऐसा लगता है इससे, असमर्थ स्वयं को पाते हो ।।

पुन पाटली में—

आग दबाये हुए हृदय मे, रहा सोचता अन्य उपाय ।
छद्मवेष मे पुनः पाटली-पुत्र आ गया हो निरुपाय ।।

जैन साधुओ का समुपासक, नृपति उदायी है पक्का ।
ऐसे नही अगर घूमा तो, ऐसे घूमेगा चक्का ।।

नृपति अष्टमी चतुर्दशी को, करते है पौषध उपवास ।
जागरणा करने को रखते जैन साधुओ को निज पास ।।

पौषधशाला के बाहर ही, रहते पहरेदार खड़े ।
सत्य अहिंसा अपरिग्रह के, पालक जैनी श्रमण बड़े ।।

दीक्षा ले ली—

रहा साधुओ की सेवा मे, लगा सीखने विधि से ज्ञान ।
दीक्षा लेने की इच्छा से वैरागी बन गया महान ।।

गुरु ने इसकी लगन देखकर, शिष्य बनाना मान लिया ।
इसे जानना था जितना बस उतना तो पहचान लिया ।।

दीक्षित बनकर करता सेवा, सुश्रूषा गुरुचरणो की ।
नही जानकारी देता है, अपने गुप्ताचरणों की ।।

छुरी छिपाकर रखी पास मे, टोह रहा है अब अवसर ।
सोच रहा है मुझे मारना, पितृ-शत्रु को हँस-हँस कर ।।

चिन्तन की चांदनी—

होनहार बलवान उसे तो, टाल नही सकते भगवान ।
व्यक्ति भले की और बुरे की, किसको होती है पहचान ॥

गौतम स्वामी जैसी किरिया, क्या न अभव्य किया करते ।
केवलज्ञानी भी ऐसों को दीक्षा, क्या न दिया करते ॥

शिष्य पांच सौ का अधिनेता, था आचार्य[1] अभव्य महान ।
दया न आयी जब जीवों की, हुई संघ को तब पहचान ॥

आगमोक्त व्यवहारों पर ही, आधारित है मुनि-जीवन ।
कौन बता पाता है बोलो, किसका कैसा होता मन ॥

अगर नही ऐसा होता तो आता-जाता क्यों चारित्र ।
साधुवेष धारन से केवल, होती आत्मा नही पवित्र ॥

---

१ **अभव्य आचार्य**

चन्द्रगुप्त राजा ने सपने मे देखा कि—पाच सौ हाथियो के समूह के आगे एक भडसूअर चल रहा है। सपने का अर्थ समझ मे न आया। सूर्योदय होते ही राजा के पास सूचना आई कि पाच सौ शिष्यो के परिवार से आचार्य देव पधारे हैं। राजा ने सपने का अर्थ लगाया कि पाच सौ शिष्य हस्ती हैं और आचार्य भड-सूअर हैं। परीक्षा के लिए राजा ने मुनियो के निवासस्थान के चारो ओर रात को सूक्ष्म कोयले बिछवा दिए और गुप्तचर लगा दिए।

जब मुनि परठने के लिए चले तो पैर रखते ही शरीर मे कण-कणाट पैदा हो गयी, क्योकि त्रसजीवो पर पैर रखना दयाधर्म के प्रतिकूल था। एक-एक करके सभी मुनि जब मुड़ गए तब स्वय आचार्य आगे आये और साहस के साथ उन कल्पित जीवो पर धम-धम करते चले और परठ आये। मुनियो से बोले—तुम्हे बड़ी दया आती है ? हर स्थान पर जीव ही जीव दिखाई देते हैं ! देखो मैं परठ आया न ? ऐसे छोटी-मोटी विराधना से डरा नही करते ?

राजा ने प्रात काल सारी घटना को सुनाते हुए सघ के समक्ष आचार्य को अभव्य घोपित करके सघ से हटा दिया और साधुओ की भूरि-भूरि प्रशसा की।

पाटलिपुत्र में आगमन—

शहर पाटलीपुत्र पधारे, विहरण करते श्री आचार्य ।
जो कुछ होना होता है वह, होता जाता है अनिवार्य ।।
नियमाधीन नृपति ने तिथि का, पौषधव्रत स्वीकारा है ।
गुरु से बोला, आप पधारे, यही निवेदन प्यारा है ।।

दोहा

गुरु ने उस लघु शिष्य से, कहा चलो तुम साथ ।
रहना है नृप के वहां, हम दोनों को रात ।।
उसने कहा तहत्त है, श्री गुरु का आदेश ।
वांछित सिद्धि विचार कर, पाया हर्ष विशेष ।।
कंकलोह निर्मित छुरी, पूर्णतया सभाल ।
उपकरणों के साथ में, उसको भी ली डाल ।।
पौषधशाला में किया, जाकर शीघ्र निवास ।
नृपति उदायी ने किया, गुरुवदन सोल्लास ।।
प्रतिक्रमण संपूर्ण कर, सविनय बोला भूप ।
धर्मतत्त्व का सूक्ष्मतम, बतलाइये स्वरूप ।।

राधेश्याम

गुरुवर नरवर अब दोनो ही, चर्चामग्न बने भारी ।
तत्त्व समझने समझाने में, शक्ति लगा करती सारी ।।

शिष्य का कपट—

छद्मवेष धारी मुनि बोला, मुझे सताती सिर पीड़ा ।
गुरु से पहले सो जाने में, आती अधिक मुझे व्रीड़ा ।।
बैठा रहा नही जाता है, दो आज्ञा तो सो जावूं ।
सभव है थोड़े सोने से, पूर्ण स्वस्थ भी हो जावूं ।।

देवानुप्रिय ! सोवो तुम, हम बहुत देर तक जागेंगे ।
चर्चा है रणक्षेत्र तुल्य, क्या इसे छोड़ कर भागेंगे ।।
सोया कपटी शिष्य कपट से, जाग रहे भूपति गुरुवर ।
बाहर पहरेदार खड़े है नहीं किसी का भी है डर ।।
मध्यरात्रि का समय हो गया, सविनय वसुधाधिप बोला ।
आज आपने बड़ी कृपा की, ज्ञान निधान नया खोला ।।
लिए कष्ट के क्षमा कीजिए, अब आराम करें गुरुवर !
नीद मुझे भी लगी सताने, लगा बीतने युग्म प्रहर ।।
सोये गुरु नृप सोये सुख से, निद्रा ने घेरा डाला ।
कपटी-मुनि अब उठा लोह की, छुरिका को भी संभाला ।।

अनर्थ ! अनर्थ !!

देखा गुरु-नृप निद्रागत है, पहुँचा पृथ्वीपति के पास ।
लेकर छुरी हाथ में अपने-आप कुटिल हंसता है हास ।।
बैठ गया नृप की छाती पर भेद स्वय का खोल दिया ।
तुझे मारने को ली दीक्षा स्पष्ट स्पष्ट सब बोल दिया ।।

समत्व की साधना—

अच्छी तरह सुना समझा नृप, जागा स्थिति को भी देखा ।
फिर भी खिचने दी न चित्त पर, उदासीनता की रेखा ।।
ऊँचे स्वर से नही बोलना, पौषधव्रत का नियम अटूट ।
अगर जोर से चिल्लाऊँगा, इसे लिया जायेगा लूट ।।
समतापथ में पौषधव्रत में, मर जाना ही उत्तम है ।
जीने की इच्छा करना ही, मन का व्यर्थ परिश्रम है ।।
अरि ने एक बार ही में बस, धड़ से सर को अलग किया ।
चीख नही निकली नृप-मुख से, नही किसी को सजग किया ।।

रक्त सनी उस लोहछुरी को, लाकर गुरु के पास रखा ।
निकला पौषधशाला से बस, होकर मानो हका-बका ॥
रोका नही किसी ने जाना, मुनि बाहर जाते होंगे ।
आवश्यकता करके पूरी, अभी लौट आते होंगे ॥
इसने पुर के बाहर जाकर श्रमण वेश को त्याग दिया ।
लिया पितृ - प्रतिशोध धर्म के लिए बुरे से बुरा किया ॥

आचार्य का जागरण—

अब जागे गुरुदेव स्वय ही अपने पास छुरी देखी ।
देखा तो लघुशिष्य नही है, गया कहाँ वह अविवेकी ॥
नृप के धड़ सिर अलग पडे है, पौषधशाला लाल पड़ी ।
जिनशासन के लिए हुई हा ! बदनामी की बात बड़ी ॥
श्रमण नही था, गुप्तशत्रु था, यह घटना कहती प्रत्यक्ष ।
मैं कैसे मुख दिखलाऊँगा, क्या बोलूगा संघ-समक्ष ॥
श्रमण सघ का अपयश होगा, अविश्वास होगा मेरा ।
मै प्राणान्त स्वय का करलूँ, ऐसे भावों ने घेरा ॥
कलुषित हृदय दुष्ट जन ने आ, किया यहां दोनों का नाश ।
मेरे मरने से लोगो का ऐसा ही होगा विश्वास ॥
ऐसे सोच उठाकर छुरि का, किया आत्मबलिदान बड़ा ।
गुरु-अवनीश्वर के जाने मे, थोड़ा सा व्यवधान पड़ा ॥

समत्व का परिणाम—

श्री तीर्थंकर नाम गोत्र का, बधन किया नरेश्वर ने ।
शांतभाव से बहने वाले, होते समता के झरने ॥
आगामी चौबीसी मे ये, होंगे श्री तीर्थंकर देव ।
समताशाली घटनाओ को, सज्जन सुने पढे स्वयमेव ॥

संवत् वी० नि० इकावन की, यह घटना देती ज्ञान हमें ।
पूर्वोपार्जित पुण्योदय से मिला संघ में स्थान हमें ॥
लिए संघ के, लिए तीर्थ के, संप्रदाय के लिए जियो ।
अमृत की घूंटे पीतो हो, कभी जहर की घूंट पियो ॥
करे संघ की सेवा हम सब, यही हमारा है कर्तव्य ।
इतिहासों की ऊँची बाते, कभी न होती विस्मर्त्तव्य ॥
पद्यबद्ध कर "पुष्कर मुनि" ने, इसमे फूंक दिए है प्राण ।
धर्म संघ के द्वारा ही तो दयाधर्म को मिलता त्राण ॥

। इत्यलम् ।

□

---

१ यह घटना वी० नि० स ५१ की है

2

द्रौपदी की आदर्श-क्षमा

क्षमा प्रभोरेव मता क्षमेति, न निर्बलाना पदमस्ति तत्र ।
दत्ता क्षमा येन जिघांसवेऽपि, नून महात्मा कथितः स एव ।१।

राधेश्याम

क्षमा करने वाले—

क्षमा बडे ही कर सकते है, क्षुद्र क्षमा कब कर पाते ।
निर्बलता से पिसे, हुए नर, बड़-बड करते मर जाते ।१।
यूं कर देता, यू कर देता, सोच-सोच हो जाते क्षीण ।
"मार सके पर नही मारता" है वह, क्षत्रिय परम प्रवीण ।२।
जिसे न आता बदला लेना, उसकी महिमा अपरंपार ।
बदला लेने वालो से तो, भरा पड़ा है यह संसार ।३।
पाकर सम्मुख अपराधी को, जो देता है छोड़ सहर्ष ।
भारतीय सस्कृति कहती है, है उसका ऊचा आदर्श ।४।
बदला लेने से क्या अपने, मन के, भर जाते है घाव ।
उसने ऐसा किया समझ लो, उसका ऐसा बना स्वभाव ।५।
मै क्यों उसके तुल्य बनू अब, जब कि बना हूँ मैं ज्ञानी ।
अंतर क्या आंका जायेगा, यह ज्ञानी यह अज्ञानी ।६।
हो व्याकरण किसी भाषा का, क्या न विशेष्य विशेषण है ।
मानव मानव मे अतर है, देखा कर अन्वेषण है ।७।

दुर्योधन की पीड़ा :—

गदा घाव से पीड़ित होकर, पड़ा सुयोधन जब रण मे ।
निकल न पाते प्राण देह से, घोर व्यथा है तब तन में ।८।
अश्वत्थामा आया बोला, हमें छोड़कर जाते आप ।
आप समान न अन्य नृपति का, देखा जाता तेज प्रताप ।९।
देख परिस्थिति आज आपकी, मुझे हो रहा भारी खेद ।
जो अवशिष्ट रही अभिलाषा, उसका सुना दीजिये भेद ।१०।

तर्ज—दूर कोई गाये

वेदना है तन में, दु.ख अति मन में ।
अश्वत्थामा भारी हो, सुनलो हमारी हो···।टेर।

जंघा हुई चूर चूर, वेदना है भरपूर ।
तन के मझारी हो, सुनलो.........।१।
निकल न पाते प्राण, कोई नही देता त्राण ।
चिन्ता अति भारी हो, सुनलो.........।२।
पांडव सिर कटे हुए, देखूं धड़ से हटे हुए ।
शांति पाऊं सारी हो, सुनलो.........।३।

राधेश्याम

आश्वासन और कार्य :—

अश्वत्थामा बोला अंतिम, इच्छाएँ कर दूं पूरी ।
मैंने कभी नही दिखलाई, कमजोरी या मजबूरी ।११।
शीश पाडवो के लाने को, अश्वत्थामा त्यार हुआ ।
दलबंदी वाले नर को कब, न्यायान्याय विचार हुआ ।१२।
बल से काम नही हो तब ही, छल का आश्रय लेते लोग ।
सत्यपक्ष वालो से ऐसा, हो पाता है नही प्रयोग ।१३।

जहां पांडवो की सेना थी, वहाँ चला आया है आप ।
अधेरे के बिना न होता, किसी तरह का कोई पाप ।१४।

मन अज्ञान तमोवृत था ही, और रात थी अंधेरी ।
करने से पहले जो सोचे, तो हो जाए कुछ देरी ।१५।

सोये थे सुत पांचाली के, इसने सोचा पांडव हैं ।
काट लिए पांचों के मस्तक, पडे हुए छोडे शव हैं ।१६।

दुर्योधन के पास—

पाँचों मस्तक रख कंधे पर, आया दुर्योधन के पास ।
सोच रहा स्वामी सेवक को, देगा लाखो ही शाबास ।१७।

पाँच पांडवो के ये सिर लो, त्यागो सुख से प्राण प्रभो ।
स्वामिभक्त सेवक होता है, अत समय मे त्राण प्रभो ।१८।

देख सुयोधन लगा विलखने, ये पाँचों है पांडव-पुत्र ।
इन्हे मारते समय बता दे, तेरी बुद्धि गई थी कुत्र ।१९।

तर्ज—चुपचुप खड़े हो

कौटुम्बिक प्रेम—

अरे द्रोणपुत्र ! कैसा, पाप यह कमाया है ।
मार किसे लाया है तू, मार किसे लाया है...।टेर।

पाँचाली के पाँचों पुत्र, पूर्ण निर्दोष है ।
पाँचों पांडवो के सग, सिर्फ मेरा रोष है ।
इन कुल-दीपको को व्यर्थ मे बुझाया है, मार...।१।

उनके ये पुत्र, पुत्र मेरे ही है मान लो ।
किसने कहा था—तुम, निर्दोषो की जान लो ।
कहते-कहते आँसू आए गला भर आया है, मार...।२।

दुर्योधन ने देह त्यागा, ऐसे अफसोस में।
उसको बताने वाले शब्द भी न कोष में।
होश अश्वत्थामा ने भी, जरा-बहुत पाया है...मार...।३।

तर्ज—चुपचुप खड़े हो

पांडव सेना में शोक लहर—

पांडवो की सेना में, हाहाकार छाया है।
हो गया अन्याय कैसा, होनहार आया है...।टेर।
सुन करके पांडव आए, रोने लगी द्रौपदी।
कौन था अपराधी जिसने, रक्त की बहादी नदी।
मार कर कृष्णा-पुत्र पापी कहलाया है, होगया...।१।
द्रौपदी की आँखों में तो, छाया अनन्त रोष है।
मेरे पुत्र-हन्ता को मैं, मार लूंगी तोष है।
गिरिराज वाले सोए शेर को जगाया है, होगया...।२।

तर्ज—जाओ जाओ ओ मेरे साधो रहो गुरु के संग

कृष्णा की प्रतिज्ञा—

लाओ लाओ उस पापी को मैं निज कर से मारूंगी...।टेर।
लूंगी सुत का वैर, अधम का-वंश समूल उखारूंगी।
वरना अपने पुत्रों के सह, मैं भी अग्नि प्रजारूगी...लाओ।१।
सत्य प्रतिज्ञा समझो मेरी, क्षात्रतेज दिखलाऊंगी।
सुत-हन्ता की हत्या द्वारा, जीवन सफल बनाऊगी...लाओ।२।

राधेश्याम

पापी पकड़ा गया—

सुनकर कठिन प्रतिज्ञा अर्जुन, अरि का पता लगाते है।
आखिर मे अश्वत्थामा को, वहाँ बाँधकर लाते है।२०।

चाहे क्यों न केशरीसिंह हो, बंधन के सम्मुख है वह दीन ।
उदासीन है ब्राह्मण सुत, अब बोला अर्जुन समय-प्रवीन ।२१।
कृष्णे ! यह लो खड्ग उठाओ, खड़ा सामने अपराधी ।
नही यहाँ पर न्यायालय है, खडे न वादी-प्रतिवादी ।२२।
इस गुरुसुत ब्राह्मण ने ही, यह कृत्य जघन्य कमाया है ।
लेना चाहो वैर सुतों का, ले लो अवसर आया है ।२३।

कृष्ण का उदात्त चिन्तन—

कृष्णा के कर मे से असि का, गिरना कुछ आसान नही ।
मनस्वियों का होता केवल, वर्तमान पर ध्यान नही ।२४।
सोच रही है कृष्णा क्या मैं, इस पर खड्ग प्रहार करूँ ।
अपनी भारतीय सस्कृति पर क्यों न क्षणार्ध विचार करूं ।२५।
इसे मारने से क्या मेरे, पुत्रो को मै पा लूंगी ।
अथवा मेरे जैसा ही दुख, इसकी मां पर डालूंगी ।२६।
अगर पुत्र मेरे आ जाएँ, तो है इसे मारना ठीक ।
वरना इसे मारने की भी, कैसे मानी जाये सीख ।२७।
बलिवेदी का अज हो जैसे, खडा द्विजन्मा दीन-वदन ।
नही वदन से शब्द निकलता, नेत्रों में से नही रुदन ।२८।
कुछ न दिखाई देता इसको, दीख रही है मौत खड़ी ।
इसके जीवन मे यह ऐसी, हुई उपस्थित एक घड़ी ।२९।
बचने की आशा न इसे है, नही बचाने वाला अन्य ।
अन्य पुरुष क्या कर पायेगा, इसके जैसा कृत्य जघन्य ।३०।
यह भी अपनी माँ का प्यारा, जैसे पुत्र मुझे प्यारे ।
ऐसे सोच-समझ कृष्णा ने, ऐसे स्वर हैं उच्चारे ।३१।

तर्ज—दुनिया यह बाजार

इसे छोड़ दिया जाए—

प्रीतम ! इसे छोड़ दो, बन्धनों को तोड़ दो ।
देकर अभयदान इसके जीवन को मोड़ दो···।टेर।

मृत्युभय से अश्वत्थामा यह, कैसा है गमगीन हो ।
असि म्यान के अन्दर रखकर, देना पाठ नवीन हो ।प्रीतम।१।

शिक्षण समय में आप स्वय भी, पढ़ते थे गुरु पास हो ।
पुत्र समान कृपी मानती, करती प्रेम प्रकाश हो ।प्रीतम।२।

सुतमारक इस अधम शत्रु की, यदि करूँ मैं घात हो ।
मेरे समान वह होगी दुखिया, कृपी बेचारी मात हो ।प्रीतम।३।

राधेश्याम

कथासार—

वैर वैर से शमन न होता, अतः मारना इसे नही ।
क्षमादान की परम महत्ता, दीखेगी यह किसे नही ।३२।

मुक्त कर दिया गया पाश से, आस-पास में फैला हर्ष ।
कृष्णा ने कर दिखलाया है, क्षमादान का उच्चादर्श ।३३।

धन्य धन्य की आवाजों से, गूंज उठा सारा आकाश ।
भारतीय संस्कृति ने ऐसा, रखा सुरक्षित सत्यप्रकाश ।३४।

'पुष्कर मुनि' ने कविता लिख दी, कथा महाभारत की ले ।
सार यही है अपराधी को, दान क्षमा का कोई दे ।३५।

सवत् युग्म हजार तीस का, आये है हम 'पुष्कर' में ।
क्षमादान का यह स्वर गूँजे, नर नर के पावन उर में ।३६।

3

सत्यान्वेषी आचार्य श्री सय्यंभव

दोहा

करो सत्य-अन्वेषणा, अगर चाहिए सत्य ।
भोजन क्या होता नही, पथ्य अपथ्य कुपथ्य ।।

दूध-दूध होते नही, सारे एक समान ।
अर्क दुग्ध के पान से, पुष्ट न बनते प्रान ।।

धर्म धर्म कहते सभी, धर्म धर्म मे फर्क ।
मर्म धर्म का समझ लो, करके तर्क वितर्क ।।

'पुष्कर' पण्डित पुरुष नित, करते नव्य प्रयास ।
श्री सय्यभव सूरि का, पढो पुण्य इतिहास ।।

राधेश्याम

प्रभव की चिन्ता—

श्री जम्बू स्वामी के पटधर, हुए प्रभव अति प्रतिभावान ।
इन दोनों की जीवनियों का, जैन जाति को पूरा ज्ञान ।।

सूरिप्रभव ने सोचा होगा, कौन सूरि मेरे पश्चात ।
चिन्तनीय है सोचनीय है, मेरे लिए प्राथमिक बात ।।

श्रमण-श्रमणियो मे से कोई, नही दृष्टिगत हुआ समर्थ ।
श्रावक और श्राविकाओ को, देखा ध्यान लगा अव्यर्थ ।।

बिना योग्यता गणिपिटका को, संभालेगा कौन भला।
चार तीर्थ से हटकर चिन्तन, अन्य जाति की ओर चला॥

यह योग्य है—

राजगृहवासी सय्यंभवभट्ट, योग्य, उद्भट विद्वान।
बहुत योग्य है मेरे पीछे संभालेगा मेरा स्थान॥

वैदिक धर्म पालने वाला, अनुशासनप्रिय निष्ठावान।
जैनधर्म का जिसे नही है, अभी अलौकिक मौलिक ज्ञान॥

ज्ञानी को ज्ञानी बनने मे, लग सकती है देर नही।
मुद्गशैल प्रस्तर में किंचित, पड़ने वाला फेर नहीं॥

जैन साधुओं के प्रति मन में, श्रद्धा का संचार नही।
दर्शन पाने प्रवचन सुनने, को भी जो तैयार नहीं॥

श्रमण नाम से जिसे घृणा हो, सरल न उसको समझाना।
कार्य असम्भव को संभव कर, श्री सय्यंभव को पाना॥

ऐसे सोच-विचार किया है, राजगृह की ओर विहार।
गुणशीलक बन मे आ ठहरे, ऐसा ही था समयाचार॥

दोहा

ऐसे किया—

श्री सय्यभव कर रहे, अपने घर पर यज्ञ।
बैठे हैं आचार्य वर, यज्ञ - होम - विधि - विज्ञ॥

बनी यज्ञशाला जहां, लगा वहां पर ठाठ।
यज्ञाराधक बोलते, शांतिमन्त्र का पाठ॥

देते आहुति आज्य की, जहां अखंडित आग।
यज्ञवाटिका मे बने, ऐसे बहुत विभाग॥

राधेश्याम

दे उपयोग ज्ञान का गुरु ने, जान लिया है समय विशिष्ट ।
बोले अपने दो शिष्यों से, कार्य एक करना है क्लिष्ट ॥
सय्यंभव ब्राह्मण अपने घर, करता बैठा यज्ञ जहाँ ।
जाओ इतना सा कह आओ, नही ठहरना पलक वहां ॥

(अहोकष्टमहोकष्टं, तत्वं न ज्ञायते क्वचित्)

अहो कष्ट है अहोकृष्ट है, तत्त्व समझते क्वचित् नही ।
लाभ छिपा रहता है कितना, अल्पकथन मे कही-कही ॥

पाठशाला के पास—

शिष्य विनीत साहसी स्वीकृत कर, गुरु आज्ञा चल आये ।
सोचा कैसे बोला जाये जैसे द्विजवर सुन पाये ॥
यज्ञभवन के भीतर जाना, खतरा लेना मोल बड़ा ।
बोल बडा गुरुवर का जैसा, जीवन भी अनमोल बड़ा ॥
गुरु ने हमे यहां भेजा है, इसमे शासन का हित है ।
शासन की सेवा करने को, जीवन पूर्ण समर्पित है ॥
यज्ञस्थल के दरवाजे के सम्मुख जाकर बोले बोल ।
खिसक गये जल्दी से आगे, कर सम्पन्न कार्य अनमोल ॥

कार्य समाप्ति—

शिष्य युगल सकुशल आ पहुँचा, गुरु को वृत्त सुनाया है ।
कथन हमारा द्विज सय्यभव, स्वयं स्पष्ट सुन पाया है ॥
सुन आचार्य देव फरमाते, आर्य ! कार्य श्रम सार्थ किया ।
बहुत बड़ा परमार्थ करेगी, लिए सघ के यही क्रिया ॥

सय्यंभव का अन्तर—

सय्यभव के श्रुतिपट पर जा, स्पष्ट गूजते शब्द सही ।
अहो कष्ट है, अहो कष्ट है, किसने ऐसी बात कही ॥

क्या है कष्ट, तत्त्व क्या है यह, मुझे जानना सही-सही ।
यज्ञक्रिया करते रहने को, बात द्विजों ने मुझे कही ॥
यज्ञाचार्यो से जा पूछूँ, यज्ञ रहस्य सुनादे स्पष्ट ।
बिना ज्ञान के यज्ञ क्रियाऐ, संभव है हो सारा कष्ट ॥
सत्यान्वेषी श्री सय्यभव, लगा सोचने पद का अर्थ ।
यज्ञ अर्थ समझा न गया तो, यज्ञ, यज्ञशाला है व्यर्थ ॥
मै न जानता तत्व, तत्व की, खोज अवश्य करूंगा अब ।
अर्थ पूछने में आचार्यो से बिल्कुल न डरूंगा अब ॥

दोहा

यज्ञाचार्य और सय्यंभव—

पूछा यज्ञाचार्य से, कहिए सच्चा तत्व ॥
तत्त्व बिना विधि यज्ञ की, उपजाती विषमत्त्व ।
यज्ञ स्वयं ही तत्व है, तत्त्व न इससे भिन्न ।
प्रश्न निरर्थक पूछकर, करो न हमको खिन्न ॥

नई दिशा की खोज—

किसी अन्य से पूछकर, करू सत्य पहचान ।
प्रश्न पिपासा से यहां, नर बनता विद्वान ॥
गया प्रभव के पास में, पूछा वही सवाल ।
गुरु बोले इसके लिए, लो द्विज की सभाल ॥
किया जाय जिस यज्ञ मे, पशुओं का बलिदान ।
ऐसे यज्ञो से नही, हो सकता कल्यान ॥
यज्ञ अहिंसात्मक अमर, दे सकते सुख-शांति ।
पूछो यज्ञाचार्य से, हट जायेगी भ्रान्ति ॥
भय दिखलाने से तुरत, वह बोलेगा सत्य ।
औपधि से बढकर न क्या, गुण देता है पथ्य ॥

जीवित रखने के लिए, गणिपिटका का ज्ञान ।
सय्यभव को सूरिपद, करते प्रभव प्रदान ।।

पवित्र प्रेरणा प्रद—

सत्यान्वेषी श्री सय्यभव, स्वामी का सक्षिप्त चरित्र।
सत्यशोध करने वालों के, लिए प्रेरणास्थान पवित्र ।।
सत्य प्रधान चरित्र पद्यमय, पुष्कर मुनि ने रच डाला ।
पद्य प्रेमियों के सम्मुख यह, सत्य सुधा का है प्याला ।।

[परिशिष्ट पर्व, सर्ग ५]

□

बालर्षि मणक

4

दोहा

लिये त्याग के वय सभी, सभी समय उपयुक्त।
पके विना ही समय के, बन्दी वना न मुक्त॥
वय से अथवा व्यक्ति से, बंधे न रहते रोग।
वधा हुआ हर समय से, कृत कर्मों का भोग॥
समय वही संन्यास का, जब आये वैराग्य।
त्यागी बनते वे यहाँ, जिनका ऊँचा भाग्य॥
ज्ञान विवेक विराग का, उत्तम है आनन्द।
सस्कारों से है जुड़ा, इन सबका सम्बन्ध॥
श्री बालर्षि मणक का, जीवन पूर्ण पवित्र।
दिखलाया जाता यहां, उसका ही लघुचित्र॥
सय्यंभवसुत मुनिमणक, सयमप्रेमी सन्त।
सत्य साधना के लिये, स्वीकारा सत्पन्थ॥
"पुष्कर" पावन प्रेरणा, ग्रहण करेंगे लोग।
सदुपयोग साहित्य का, मणि-कांचन संयोग॥

राधेश्याम

सहानुभूति के स्वर—

सय्यंभव प्रव्रजित होगया युवती पत्नी को परित्याग।
कैसा कठिन हृदय नर निकला, जिसे न स्त्री पर आया राग।

फिर वही—

सय्यंभव उठ आ गया, अब अपने आवास।
प्रश्न उपस्थित फिर किया, यज्ञाधिप के पास॥

असतोष और असि—

यज्ञ स्वयं ही मार्ग है, यज्ञ स्वयं ही मुक्ति।
दी है यज्ञाचार्य ने, नई न कोई युक्ति॥
सय्यभव के स्वांत को, हुआ नही सन्तोष।
असतोप से उपजता, अधिक अधिकतम रोप॥
उठा उठा लाया तुरत, तीक्ष्ण एक तलवार।
बोला तुम से पूछता, प्रश्न दूसरी बार॥
तत्त्व बता दो यज्ञ का, जो जीवन से प्यार।
देख लीजिए सामने, उठी हुई तलवार॥

राधेश्याम

सत्य सामने आ गया—

कहा धूजते हुए विप्र ने, सुनो यज्ञ का सच्चा अर्थ।
लिए स्वर्ग के पशुओं की बलि, देते अज्ञ और असमर्थ॥
"हिसा नही याज्ञिकी हिंसा" हिंसात्मक है यह वाणी।
दयाधर्म ही धर्म सनातन, जहां समान सभी प्राणी॥
तप है ज्योति. ज्योतिस्थान है जीव, करछियाँ तीनो योग।
अग्नि जलाने के कडे हित, देह बताते विद्वद्लोग॥
शांतिपांठ संयम है, इन्धन, कर्मवर्गणा कहलाती।
यज्ञ अहिंसात्मक की सुन्दर, परिभाषा सबको भाती॥
पशु हिसामय यज्ञों से हम, उदरपूर्ति करते आये।
स्वार्थ प्रपूरित हृदयों से कब, सत्य कथा खोली जाए॥

तत्त्व यही है, अर्थ यही है, यज्ञ यही है हे द्विजवर ।
जैसी आज्ञा हो अब वैसा कार्य करे या जाएँ घर ।।

सय्यंभव ने शांत चित्त से कहा आप जा सकते हो ।
कभी कार्य हो सेवालायक, हर्ष सहित आ सकते हो ।।

पुन: प्रभव के पास—

श्री सय्यभव प्रभव चरण में, हुआ उपस्थित होकर शान्त ।
दो उपदेश विरागात्मक, बस मेरा चित्त बना निर्भ्रान्त ।।

पूर्ण समर्थ प्रभवस्वामी ने, प्रवचन द्वारा दिया प्रकाश ।
जिससे तत्क्षण सय्यंभव के, कण-कण में उपजा विश्वास ।।

चिन्तन बदला जीवन बदला, दृष्टिकोण सब बदल गया ।
बदली हुई धारणाओं से, सय्यभव द्विज बदल गया ।।

गुणस्थान के परिवर्तन से, पाया प्रभवसूरि से सत्य ।
वैद्य दवा बतलाएगा तो, बतलाएगा पथ्य अपथ्य ।।

शांति मिली आत्मा को जिससे, सुना अहिंसात्मक उपदेश ।
उत्प्रेरित हो उठा चित्त अब संयम लेने को सुविशेष ।।

महान् त्याग—

गर्भवती पत्नी को त्यागा, त्यागा घर का मोह सकल ।
विज्ञ व्यक्तियों द्वारा होती कभी किसी की नहीं नकल ।।

दोहा

प्रभवसूरि के सन्निकट, कर सयम[1] स्वीकार ।
सय्यभव ने सत्य का, पाया साक्षात्कार ।।

---

१ दीक्षा के समय ये २८ वर्ष के थे ।

बचपन की विशेषता—

बढ़ने लगा, लगा है पढने, लगा खेलने खेल नये।
वय रुचि मिला-मिला शिशुओं के लगा मिलाने मेल नये ॥
विद्याध्ययन और चचलता, सुन्दरता शुभकारी है।
बालजगत की महिमा भारी, प्रभुमहिमा सम प्यारी है ॥
बालक के मन मे न पाप है, तन मे पाप नही आता।
नहीं वचन मे पाप, पाप का जुड़ा नही शिशु से नाता ॥

एक दिन का प्रसंग—

आठ वर्ष का मणक होगया, साथी इससे कहते है।
नाम पिताजी का क्या है वे, और कहाँ पर रहते है ? ॥
इसने नाम न सुना आज तक, माँ से या घरवालों से।
भ्रमित चकित होगया मणक मन, मन के नये सवालो से ॥
माँ को पूछ बताऊँगा मैं, छुटकारे का पाया पंथ।
बालक मणक बना व्यवहारिक-विनयी और सरल अत्यन्त ॥

पुत्र और मां—

माँ को दुःखित नही बनाना, दिला पिताजी की स्मृतियाँ।
बहुत रुलाने वाली होती, मृत पति की विधियाँ गतियाँ ॥
अन्य किसी से पूछूँगा तो, होगा मुझको सकुचाना।
माँ से ही पूछा जाये बस, यही मणक ने मन ठाना ॥
घर आया मुख-हाथ-पैर धो, जा बैठा जननी के पास।
माँ ने सिर पर हाथ फिराया, पूछा खेल लिया सोल्लास ॥
हाँ, माँ खेला किन्तु आज मैं, प्रश्न एक पूछूं तुझ से।
मेरे पूज्य पिताजी का कुछ, वृत्त बता देना मुझसे ॥

क्या है उनका नाम काम फिर, ठाम कौन से वे रहते।
प्रतिदिन मेरे साथी इसका, उत्तर देने को कहते॥
पूछूँ पूछूं प्रतिदिन लेकिन, पूछा गया न मेरे से।
आज बड़ा साहस करके ये, प्रश्न कर लिए तेरे से॥
मां का हृदय लगा रोने बस, सुने साहजिक सभी सवाल।
कितना भोला-भाला है यह, मेरा मणक मनोहर-बाल॥
इसे सुनादू घटना सारी, क्योंकि समझने लगा सभी।
नही कभी की करू प्रतीक्षा, कहदू सब कुछ अभी-अभी॥
बोली बेटा! पिता तुम्हारे, चले गये कर मेरा त्याग।
श्रमणो की सत्शिक्षाओं ने, उपजाया उनको वैराग॥
जन्म न हो पाया था तेरा, मुख न उन्होने था देखा।
उनका मुख न निहारा तूने, ऐसी कर्मों की रेखा॥
सय्यभव है नाम अभी वे, श्रमणवेष मे जीवित है।
श्रमणधर्म की सीमाओ में, उनकी गति-विधि सीमित हैं॥

दर्शन की उत्सुकता—

पूज्य पिताजी के दर्शन की, जगी लालसा मन ही मन।
कैसे पा सकता हूँ हे मां! अब उनके पावन-दर्शन॥
मां बोली-क्या पता? कहां पर, वे विहरण करते होंगे।
या एकान्त साधना में रत, ॐ अर्हं स्मरते होंगे॥
जहां कही पर होगे उनको, ढूढूंगा मैं अपने आप।
क्यों न सफलता पाऊंगा मैं, अगर हृदय मेरा निष्पाप॥
तू छोटा है तू बालक है, कैसे खोज निकालेगा?।
पूज्य पिताजी हो है कैसे पहचानेगा, पा लेगा?॥
भावी की आशकाओ से, कांप उठा मा का तन-मन।
लेकिन पुत्र मागता आज्ञा, शिशुहठ का होता न दमन॥

होगा सो होगा—

मां ने सोचा, सुत न रुकेगा, जायेगा अब छोड़ मुझे।
सुत के साथ बात छोटी पर, करना उचित न झोड़ मुझे ॥
पति के बिना रही वैसे ही, पुत्र बिना भी रह लूंगी।
पति का विरह सहा वैसे ही, पुत्र-विरह भी सहलूंगी ॥
जो होना होगा मेरा, मैं उसको टाल नहीं पाती।
स्त्री को करनी ही पड़ती है, वज्र तुल्य अपनी छाती ॥
किया स्त्रियो ने त्याग हमेशा, मै भी त्यागूं मोह बड़ा।
मोहराग में और त्याग में, छिड़ा खड़ा विद्रोह बड़ा ॥
सुत से बोली जाओ बेटे ! पहुंचो पूज्य पिता के पास।
सूर्य समग्र सृष्टि को देता, समझो एक समान प्रकाश ॥

हम खुश होंगे—

जब मैं उनको पा लूगा तब, ले आऊंगा अपने घर।
मुझे किसी से किसी बात का, लगता इसमें कभी न डर ॥
मै खुश होऊंगा उनको ला, तू खुश होगी उनको पा।
बडे प्रेम से आज्ञा दे दी, तू है मेरी प्यारी मां ॥

अज्ञात की ओर—

बालक अपने घर से निकला, करने पूज्य पिता की खोज।
अधिक सोचने से ही मन पर, बहुत अधिक बढता है बोझ ॥
जाना कहाँ कहाँ पर खाना, रुकना कहाँ कहां सोना।
इसे नही इसकी चिन्ता है, आज और कल क्या होना ॥
गांव नगर पुर गिरिवर नदियां, जंगल पार अनेक किये।
पूज्य पिताजी को पाने मे सूर्य-चन्द्र को एक किये ॥

पहुँच गया—

बहुत दिनो के बाद आज वह, पहुँचा चम्पापुर के पास ।
थका नही था, रुका नही था, लिए हुए अपना विश्वास ॥
सम्मुख आते हुए मिले है सय्यभव आचार्य महान ।
बालक की स्वाभाविकता पर, सहसा गया आपका ध्यान ॥
बालक ने भी सम्मुख झुककर, मुनि चरणों मे किया प्रणाम ।
सोचा इनसे पूज्य पिता का, पता पूछ लूंगा निष्काम ॥
पूज्य पिताजी के साथी ही, होगे ये सच्चे मुनिवर ।
मुनियों मुनियों का होता है, गच्छ और गण कुल ही घर ॥

मेरे ही मित्र हैं—

श्री आचार्यदेव के मन मे, उमड़ रहा वात्सल्य महान ।
वत्स कौन हो ? किधर चले हो, सूचित करो नाम सह स्थान ॥
बालक बोला विनयभाव से, मुझको सभी मणक कहते ।
सय्यभवसुत, राजगृही मे, मेरे घर वाले रहते ॥
गर्भावस्था मे था जब, वे दीक्षित होकर गये निकल ।
उन्हे खोजने को निकला हूं, निश्चित वे जायेगे मिल ॥
आप जानते हो, यदि उनको, मुझे मिलादे उनसे अब ।
और अधिक क्या कहूँ आप से, बतला दिया गया है सब ॥
बोल न पाये, भेद स्वय का, खोल न पाये खडे-खडे ।
सिन्धु समान गंभीर हृदय के, होते है आचार्य बडे ॥
अपना बालक जान लिया है, उमड़ पड़ा अतर मे स्नेह ।
पितृ-देह है अथवा मानो है साकार स्नेह का देह ॥

वत्स ! पिताजी तेरे मुझसे, बिल्कुल भिन्न नहीं मानो ।
है हम एक विवेक सहित बस, मुझे पिता ही पहचानो ॥
जो कुछ उनसे कहना है वह, मुझ से कह दो डरो नहीं ।
भय, संकोच, सहज लज्जा के, भाव हृदय में भरो नही ॥

दीक्षा की तैयारी—

उनके पास रहूँगा मैं बस ऐसी आशा लाया हूँ ।
मेरी मां की आज्ञा लेकर, घर से चलकर आया हूं ॥
उसे उपाश्रय में ले आये, श्री आचार्य स्वयं के साथ ।
चलते-चलते अपने सुत का, देख लिया है दक्षिण-हाथ ॥
बालक को प्रव्रजित कर लिया, दिया ज्ञान का फिर उपयोग ।
इसका मेरे सह रहने का, है कितने दिन का संयोग ॥
मात्र मास छह शेष रहे है, इसके इस लघु जीवन के ।
आराधना इसे करवादें, ऐसे भाव उठे मन के ॥
इतने अल्प समय में कैसे, श्रुताध्ययन कर पायेगा ।
द्वादश अग सिन्धु को तरकर, कैसे तट पर जायेगा ॥

दशवैकालिक बनाया—

ऐसे सोच-विचार स्वयं, पूर्व श्रुतों से कर उद्धार ।
दशवैकालिक की कर रचना, किया मणक पर अति उपकार ॥

दोहा

कर सकते है पूर्वधर, ऐसा कोई कार्य ।
सम्मुख होना चाहिए, कारण बस अनिवार्य ॥

राधेश्याम

करवाया अध्ययन स्वयं ने, भली भांति बालक मुनि को ।
कुछ भी दुर्गम लगा न करता, गुरु आज्ञा पालक मुनि को ॥

आज्ञापालकता के कारण, शिशुमुनि सबके मन भाये ।
ऐसा सद्‌गुण कहो कौन सा ? जो न विनय से आ पाये ।।

सेवारुचि, श्रुतरुचि हो, तपरुचि और विशेष जिसे ।
आराधक पद उसे मिलेगा, और मिलेगा कहो किसे ? ।।

लघुमुनि से ले सेवाए मुनि-देते उत्तम लाभ विशेष ।
लघुमुनियो की गति-मति-कृति-स्मृति,
रखती ताजा स्फूर्ति हमेश ।।

अंत समय और आराधना—

अत समय सन्निकट आगया, जान गये ऐसा आचार्य ।
आलोयणा इसे करवाना, उचित यही है मेरा कार्य ।।

सभी क्रियाएं करवाने मे, स्वयं हुये सबसे आगे ।
सावचेत है अपने मन मे, नही स्नेह सुत का जागे ।।

लघुमुनि ने अति लाघवता से, किया देह का त्याग तुरत ।
श्रमणधर्म की सदाराधना, सरल सहज सादा अत्यन्त ।।

भेद खुल गया—

स्वर्गवास होगए मणक मुनि, पूर्ण समाधि सहित प्यारे ।
गुरु नेत्रो से आंसू लुढके, चमक उठे मुनिजन सारे ।।

मुनि बोले—गुरुदेव आपके मुख पर देखा खेद नही ।
कैसे आंसू गिरे आज ये, समझा हमने भेद नही ।।

क्या सागर भी विचलित होता, हिलता है क्या मेरु शिखर ? ।
अप्रत्याशित इस घटना से, हमें हो रहा बड़ा फिकर ।।

गुरु बोले—बालर्षि मणक था, मेरा ही आत्मज प्यारा ।
आज खोलना पड़ा मुझे यह, छिपा भेद जितना सारा ।।

मुनि बोले—पहले बतलाते, करते गुरु-सुत की सेवा।
पश्चात्ताप सिवा अब हमको, हाथ नहीं आता मेवा॥
गुरु बोले—आर्यो ! तुम उससे, करवाते सेवा न अगर।
लघुमुनि अल्प समय में कैसे, कर्म निर्जरा पाता कर॥
इसीलिए उसके हित मैंने, दशवैकालिक सूत्र रचा।
सम्यग् आराधन कर पाया, ज्ञान-ध्यान में रचा-पचा॥

संघ का आग्रह :—

पूर्वो में संवरण सूत्र का, कर देने का उठा विचार।
कारण बिना कार्य का बोलो, किसे कहा जाये आधार॥
मुनियों सहित संघ अब बोला, इसे यथावत् रहने दो।
उपयोगिता बढेगी इसकी, हमें भार सब वहने दो॥
मिला संघ को सूत्र नया बस, मानों गुरु का मिला प्रसाद।
दशवैकालिक के मिष करते, सय्यंभव की ताजा याद॥
मणक हेतु जो रच गया था, पूर्वो का है इसमें सार।
जैनसंघ पर सूरिवर्य का, बना रहेगा यह उपकार॥

दोहा

कथासार—

अल्पावधि में कर लिया, आत्मा का कल्याण।
श्री बालर्षि मणक का, माननीय है स्थान॥

राधेश्याम

पुष्कर मुनि ने बड़े प्रेम से, लिखा शुद्ध बालर्षि चरित्र।
इसको पढ़कर, संयम-पथ पर, बढकर बनिये अधिक पवित्र॥

5

जीवन के रंग

दोहा

रग उषा का अलग है, अलग साँझ का रंग ।
रग रग के घुलन का, अलग - अलग है ढंग ॥
रंग अलग तारुण्य का, रग बाल्य का भिन्न ।
रग विविधता वस्तु को, रखती है विच्छिन्न ॥
पत्र पुष्प के रग मे, है वैविध्य विशेष ।
रग फलों मे अलग है, नियमित प्रकृति हमेश ॥
इस जीवन के रग मे, बहुत उतार-चढाव ।
जैसे दुर्गम मार्ग मे, पड़ते बडे घुमाव ॥
उन्नति अवनति देखकर, कभी न होना खिन्न ।
अव-उत्सर्पण काल के, निश्चित होते चिन्ह ॥
महामात्य शकडाल का, पढिये जीवन काल ।
रखता सत्साहित्य की, पुरावृत्त संभाल ॥
जलती हुई मशाल से, लेता जगत प्रकाश ।
पुष्कर मुनि इतिहास पर, रखता है विश्वास ॥

राधेश्याम

देश और राजधानी—

महिमाशाली मगध देश की, वसुधा थी अति उपजाऊ ।
ग्रस न सका था उसे कहत का, क्रूर केतु अथवा राहू ॥

सुख समृद्धि वृद्धि पथ पर थी, सिद्धि जमाए रखती पाँव, ।
इसीलिए दुर्दम्य शत्रु के, असफल बनते सारे दाव ।।
गंगा तट पर बसा हुआ था, शहर पाटलीपुत्र भला ।
दर्शनीय रमणीय बनी थी, जनपद की स्थापत्य कला ।।
धन से धान्य धान्य से धन की, मानो प्रतिस्पर्धा होती ।
धान्य कणों से कभी न तुलना, कर पाते उज्ज्वल मोती ।।

राजा और मंत्री

नवम नन्द धननन्द नृपति के, शासन में शुभ सुख पाता ।
सुख ही सुख की जहाँ बात हो, वहां कभी क्या दुःख आता ।।
महामात्य शकडाल नाम का, स्वामिभक्त विद्वान महान ।
राज्य व्यवस्था में होता है, महासचिव का ऊँचा स्थान ।।
कल्पकवंशी महामात्य की, गृहलक्ष्मी लक्ष्मीदेवी ।
लक्षण से जो लक्ष्मी होती, होती वह स्त्री शुभसेवी ।।
नर की सच्ची साथिन स्त्री है, उससे मिलता सुख सहयोग ।
संशयपात्र बने रहते हैं, दुनिया के अविवाहित लोग ।।

स्त्री और संतान—

सतति रत्न दिया करती है, रत्नकुक्षि धरने वाली ।
कुलक्षणा नारी होती है, कुल का क्षय करने वाली ।।
सखा श्रेष्ठतम शत्रु निम्नतम उत्तम और अनुत्तम नार ।
पाणिग्रहण करने से पहले, करले अच्छी तरह विचार ।।

सचिव के सुत—

दो सुत सात सुताओं की मां, लक्ष्मीदेवी बन पाई ।
आप्रेशन करवाने की विधि, अभी अभी जग में आई ।।
स्थूलिभद्र पहला सुत प्यारा, उदासीन जग से रहता ।
कहता नही इसे कोई कुछ, वह न किसी को कुछ कहता ।।

अंतरंग से अरुचि हुई थी, दुनिया के सुखभोगों से।
बदल न पाये जिसे सचिव खुद प्रतिदिन नये प्रयोगों से ॥

दोहा

कला निपुण वारांगना, कोशा जिसका नाम।
मानो उसने वश किया, अपने मिष से काम ॥
जिसे दिया दिल खोलकर, सुन्दरता ने साथ।
उसकी बड़ी लुभावनी, होती सारी बात ॥
आते, जो भी मिलन हित, हो जाते आधीन।
अपने को उसने सदा, पाया पूर्ण नवीन ॥
लोकाचारों मे कुशल, कामकला मे दक्ष।
नही दूसरा ठहरता, पाकर उसे समक्ष ॥
अपने प्रिय सुत को वहां, भेज रहे शकडाल।
पड़ जाता है समय पर, सिखलाना जंजाल ॥
व्यवहारिक शिक्षा वहां, स्थूलिभद्र को प्राप्त।
होने से जी लग गया, झंझट हुआ समाप्त ॥
श्रियक पिता के पास मे, करते निज अभ्यास।
अलग-अलग होता यहाँ, सबका उचित विकास ॥
जीवन के दिन शांतिमय, होते शीघ्र व्यतीत।
वर्तमान कब पूछता, भावी और अतीत ॥

राधेश्याम

एक निर्धन विद्वान—

उसी शहर मे वररुचि नामक, पडित रहता बहुत प्रवीण।
सरस्वती की पूर्ण कृपा थी, कृपा दृष्टि कमला की क्षीण ॥
विद्वज्जन तन मन से करते, वररुचि का सम्मान महान।
धनवानो के बिना बताओ, मिले कहाँ से द्विज को दान ॥

राज्य सभा में जाने के हित, कोई उचित निकाला पंथ ।
साथ समय का मिल जाने पर, बनता कार्य सुगम अत्यन्त ॥
तत्क्षण रचित उचित छन्दों में, स्तुति करता वसुधाधिप की ।
यही चाहता जैसे तैसे, मुझ पर नजर बने नृप की ॥
राजा उसकी विद्वत्ता पर, मुग्ध बना इतना भारी ।
मुक्तकठ से सराहता था, उसकी वे कृतियाँ सारी ॥
देने की इच्छा से जब भी, महामात्य का मुख देखा ।
रुख न सचिव का जान चित्त पर, खिच जाती दु:ख की रेखा ॥

पंडित की प्रवीणता—

पंडित जी ने भाँप लिया है, महामात्य की दृष्टि नही ।
इसीलिए महाराज मेघ की, होती मुझ पर वृष्टि नही ॥
कैसे इसे रिझाया जाए, कैसे पाया जाये दान ।
विद्वानों के लिए समझना, पंथ ढूंढ़ना भी आसान ॥
महामात्य की पत्नी को यदि, पहले रिझा लिया जाये ।
सभव है उसके द्वारा ही, मेरा सोचा बन पाये ॥
भामिनियाँ भावुक होती है, रीझ-खीज जाती तत्काल ।
भूत-भविष्यकाल का इनको, कम होता है क्या न खयाल ॥

पोबारा पच्चीस—

पाकर अवसर पडित पहुँचा, श्री लक्ष्मीदेवी के पास ।
अपनी दु:खदशा पर कस कर, डाला विधियुत पूर्ण प्रकाश ॥
मत्री गृहिणी हुई प्रभावित, बोली कोई बोलो काम ।
काम आप से ही लेना है, लेना कुछ भी नही इनाम ॥
महामात्य यदि राजसभा मे, सराहना करदे मेरी ।
तो राजा से धन पाने में, नही लगेगी कुछ देरी ॥

धन से दु.खी नही होता तो, देता नही आपको कष्ट ।
मेरे मन की छुपी भावना, रखदी श्रीचरणों मे स्पष्ट ॥

वचन या आश्वासन—

श्रीयक की मां बोली मै अब, देती हू यह आश्वासन ।
लिए आपके महामात्य से, बिछवा दूंगी स्तुत्यासन ॥
जिस आशा से मैं आया था, वह शुभ कार्य हुआ सारा ।
काम स्त्रियो के द्वारा होता, कब होता पुरुषो द्वारा ॥

पति पर दबाव—

महामात्य जब आये घर पर, खा-पीकर बैठे एकान्त ।
कभी बिना एकान्त स्थान के, चित्त नही हो पाता शान्त ॥
शांत चित्त को नही सताती, भूत भविष्यत् की शका ।
कोई घड़ी लगाती है क्या, छह बजने पर दस डका ॥

दोहा

आई पति के पास में, उठकर लक्ष्मी आप ।
सुना सुनाया शाति युत, दैनिक क्रिया-कलाप ॥
आज मिला मुझ से यहाँ, श्री वररुचि विद्वान ।
राज्य सभा मे भी जिसे, मिला हुआ है स्थान ॥
सुनिए उसकी हो रही, बहुत प्रशंसा आज ।
सम्मानित करता उसे, सारा सभ्य समाज ॥
क्यों न प्रशंसा कर रहे, उसकी केवल आप ।
क्या गुण की अनुमोदना, कभी लगाती पाप ॥
लोग आपको सकुचित, समझेगे असहिष्णु ।
या है केवल आप ही, शंकर ब्रह्मा विष्णु ॥
बहुत बड़े नीतिज्ञ हैं, बहुत बडे विद्वान ।
किसी अन्य विद्वान को, आप दीजिए स्थान ॥

अपनी पत्नी के सुने, लंबे चौड़े गीत ।
सुनना सबको उचित है, राजनीति की रीत ॥

महामात्य का मत—

बोले मंत्री अब सुनो, क्या है सच्ची बात ।
वररुचि में कुछ दोष है, विद्वत्ता के साथ ॥
इसको अपने ज्ञान का, बहुत बड़ा अभिमान ।
विनयवान होता सदा, जो होता विद्वान ॥
बड़ी धूर्त्तता से यहाँ, फैलाता अज्ञान ।
सरलात्मा होता सदा, जो होता विद्वान ॥
स्वार्थ साधना के लिए, यह गाता गुणगान ।
नि.स्वार्थी होता सदा, जो होता विद्वान ॥
मरता यह धन के लिए सह लेता अपमान ।
धन लोभी होता नहीं, जो होता विद्वान ॥
इसमें पाया जा रहा, पहला ही गुणस्थान ।
होता सम्यग्दृष्टि युत, जो होता विद्वान ॥
किया गया इस व्यक्ति का, अगर स्वल्प सम्मान ।
तो फैलेगा शहर मे, कपट और अज्ञान ॥
गुण की हो संभावना, देते उन पर ध्यान ।
माने जाते जगत में, वे नर चतुर सुजान ॥
हठ छोड़ो इस बात का, करो अन्य कुछ बात ।
क्या केवल इस बात के, लिए आज की रात ॥

पत्नी का सुझाव—

इसके अवगुण पर नही, आप डालिये दृष्टि ।
दीन दु:खी द्विज मानकर करदो करुणा-वृष्टि ॥

दो शब्दों से ही अगर, इसका हो उद्धार।
बनना होगा आपको, मेरे लिए उदार॥
कल मैंने इसके लिए, किया उसे आश्वस्त।
करे आप इस बात पर, सोच-विचार समस्त॥
उसके दु.ख से मै दु:खी, बात समझलो एक।
सुखी बना दो विप्र को, है कुछ अगर विवेक॥
पिघला दिल शकडाल का, भरा सत्य हुँकार।
वरना हो जाती यहां, आज स्त्रियों की हार॥

राधेश्याम

दूसरा दिन—

राज्य सभा मे वररुचि पडित, आया श्लोक सुनाता है।
श्लोक एक सौ आठ सुनाकर, रग नया बरसाता है॥
मन्द मुस्कराहट से बोले, महामात्य भी दो अक्षर।
पडितजी की पद्यावलियां, बनी हुई है अति सुन्दर॥

दान का द्वार—

महामात्य से सराहना सुन, राजा का दिल हुआ खुला।
पिछली सारी बातों को बस, वसुधाधिप ने दिया भुला॥
प्रतिश्लोक के लिए स्वर्ण की, एक एक मुद्रा का दान।
अपने हाथो से देकर के, किया सभा मे अति सम्मान॥
किसी अन्य विद्वान् पुरुष का, हुआ नही इतना सम्मान।
इसी बात का श्रीवर रुचि को, होना ही था मन अभिमान॥
प्रतिदिन आता श्लोक सुनाता, ले जाता मुद्राए गिन।
दु.खी पुरुष क्या नही देखता, जीवन मे कुछ सुख के दिन॥
स्वल्प समय मे ही द्विज के घर, जमा हो गया धन भारी।
तन-मन भारी कर देने की, भारी-धन मे बीमारी॥

सचिव की समझ—

प्रतिदिन का यह दान, सचिव को-
दुरुपयोग धन का लगता ।
अपनी ही कृतियों से मानव, कभी स्वय को ही ठगता ।।

जनहितकारी कार्यों में ही, धन का बहुत उचित उपयोग ।
जिससे सारी राज्य व्यवस्था, और प्रभावित होते लोग ।।

नृप को कैसे रोके-टोके, धोखे का यह नही सवाल ।।
फिर भी रास्ता जिसे चाहिए, लेता है वह मार्ग निकाल ।।

राजा से बात—

अवसर पाकर मंत्री बोला—वररुचि को धन देते व्यर्थ ।
देते हो किसलिए हमें भी, समझा दो जो भी हो अर्थ ।।

राजा बोला विद्वज्जन का, है यह राजकीय सम्मान ।
विद्वज्जन की पूजा से ही, पूजित संस्तुत होता ज्ञान ।।

प्रतिदिन नव्य भव्य रचना से, हमें प्रभावित वह करता ।
भारतीय संस्कृति का ही वह, ज्ञान खजाना है भरता ।।

मंत्री बोला उनकी रचना अगर दूसरे को हो याद ।
तो क्या वे रचनाएं इसकी, मानी जाए बिना विवाद ।।

नही-नही वह कहता है, मैं प्रतिदिन रचकर लाता हू ।
एक बार जो गया सुनाया, उसे नही दुहराता हूँ ।।

इस पर जो विश्वास न हो तो, करो परीक्षण श्लोकों का ।
कभी भूल से खुला हुआ रह, जाता द्वार झरोखों का ।।

महामात्यजी ! कल ही इसके लिये प्रबंध किया जाये ।
वररुचि को क्यों ये सोनैये, मुट्ठी बध दिया जाये ।।

दोहा

मेरी सातों पुत्रियाँ, बोलेंगी ये श्लोक ।
मुझे पूर्ण विश्वास है, सुने आप बे रोक ।।
राजा बोला कल सही, लाएं उनको साथ ।
राज्य सभा मे हम सभी, सुने न क्यों साक्षात् ।।

राधेश्याम

नया विस्फोट—

राज्य सभा मे हुई व्यवस्था, कन्याओं के आसन की ।
जहाँ दृष्टि भी पड़ न रही थी, भूपति के सिंहासन की ।।
वररुचि आया रचना लाया, लगा सुनाने खड़ा खड़ा ।
शब्द अर्थ उपमाएं मिलकर, देते है आश्चर्य बड़ा ।।
वररुचि की प्रतिभा का लोहा, लगे मानने श्रोता जन ।
इसीलिए कोई क्यो रखता, सुनने का प्रस्ताव स्थगन ।।
दान प्राप्ति के लिए प्रतीक्षा, करता हुआ खड़ा द्विजवर ।
किंतु सचिव के संयोजन की, मिली नही थी पूर्व-खबर ।।

अह पर चोट—

बोले सचिव-बताओ द्विजवर, यह रचना कितनी प्राचीन ।
पडित जी चमके बोले यह, मेरी रचना सद्यस्कीन ।।
यही बनाता यही सुनाता लाता लिखकर नही कभी ।
दे दो विषय आप मनचाहा, पद्य बना दूँ अभी अभी ।।
हो ये श्लोक याद किसी को, वह जो यहाँ सुनादे तो ?
पडितजी ! नूतन रचना का, हाल कहो फिर कैसा हो ।।
पडित बोला जो भी मैंने, श्लोक सुनाये अभी अभी ।
नही दूसरा सुना सकेगा, ऐसा कहते लोग सभी ।।

फिर भी कोई व्यक्ति सुनादे, तो मानूंगा मै प्राचीन ।
समीचीन है शर्त यही बस, सुनले सारे हो तल्लीन ॥

सोच लीजिए—

बोला सचिव सोच ले द्विजवर !, उत्तावल का काम नही ।
इच्छा यही हमारी रहती, कोई हो बदनाम नही ॥
इसमें कुछ न सोचना, इसके लिए पूछना है किससे ।
वह किस से भी नही मरेगा, जो न मरा हो अहिविष से ॥
करे प्रमाणित आप इसे बस, घबड़ाने की बात नही ।
वह पंडित घबड़ाता जिस पर, सरस्वती का हाथ नहीं ॥
सभी सभासद नन्द नृपति भी, आग्रह करने लगे विशेष ।
वादविवादों में जनता की, रुचि रहती है यहाँ हमेश ॥

सिद्ध कर दिया—

महामात्य ने ज्येष्ठ सुता को, सबके सम्मुख बुलवाया ।
बेटी ! श्लोक याद है ? उसने, जी हाँ उत्तर दिखलाया ॥
अगर याद है तो वे सारे, श्लोक सुनादे अभी अभी ।
सुयश प्राप्ति का उत्तम अवसर, नर को मिलता कभी कभी ॥
पंडित नही, नही पडित सुत, सचिव सुता हो तुम केवल ।
स्खलना मत होने देना बस, यश पावोगी आज प्रबल ॥
श्लोक एक सौ आठ सुनाए, सुने अभी जो कानों से ।
रचना घोषित हुई पुरानी, यक्षादत्त प्रमाणों से ॥

अपमान और चिन्ता—

एक एक के बाद सभा में, सभी सुताएं बोल उठी ।
द्विज के पाँवों के नीचे की, धरती थर-थर डोल उठी ॥
सन्नाटा छा गया सभा में, ब्राह्मण लज्जित हुआ महान ।
उसको शीश छुपाने लायक, मिला न कोई नीचा स्थान ॥

खेद और आश्चर्य असीमित एक साथ में होते है।
यह क्या धोखा हुआ हाय हम अंधेरे में सोते है ॥
मति से भिन्न विषय था सारा, वररुचि समझ नही पाया।
कुछ किस्मत की कुछ लोगों की, होती अजब गजब माया ॥

सत्य यह था—

वास्तव मे शकडाल सचिव की, कन्याए थी बुद्धिमती।
सुनकर स्मृतिपथ पर रख लेती, विषय क्लिष्ट से क्लिष्ट अती ॥
वररुचि का अभिमान उतारा, महामात्य ने मतिबल से।
अन्य सभी अनभिज्ञ रहे थे, गुप्त रहस्य तथा छल से ॥
राजा ने धिक्कारा सारी, जनता ने धिक्कारा है।
अपमिति सह्य नही होती, पर रहा न कोई चारा है ॥
स्थान गया सम्मान गया, नित सोनैयो का दान गया।
मेरे से भी बढकर कोई, पंडित ऐसा मान गया ॥

एक नया ऊहापोह—

हारा हुआ जुआरी जैसे दाँव लगाता बढ करके।
अभिमानी वररुचि भी वैसे जाल बिछाता बढ़ करके ॥
क्या है यदि नृप दान न दे तो, दान मुझे देती गगा।
क्या विद्वान व्यक्ति को बोलो, देखा है भूखा नगा ॥
प्रात स्नान-ध्यान कर स्तुति मैं, करता गगा माता की।
वह थैली देती हाथो से, जय होती है दाता की ॥
गगा मेरी विद्वत्ता पर, मुग्ध हो रही है मन से।
ऐसा वातावरण बनाया, अपने दल के जन जन से ॥
सत्य जानने के इच्छुक नर पहुँच गए गगा तट पर।
क्या होता कैसे होता है, बात यही है स्मृति पट पर ॥

जल में डूबा हुआ द्विजोत्तम, श्लोक बोलता तन्मय बन ।
जल से ऊपर आकर स्त्री कर, थैली पकड़ाता तत्क्षण ।।
कर जल में छुप जाता वापिस, जनता कहती जय हो जय ।
लक्ष्मी से भी सरस्वती का, कोष बड़ा निर्भय अक्षय ।।
चमत्कार को नमस्कार है, नही कहावत है झूठी ।
सभी बोलते इस पर देखो, श्री गगा मैया तूठी ।।
महापुरुष यह सिद्ध पुरुष यह, विद्वत्ता है बड़ी अगाध ।
प्रतिदिन श्री गंगा मैया से, मिलता इसको कृपा-प्रसाद ।।

राजा भी आये—

राजा और सचिव तक पहुँची, चमत्कार की यह चर्चा ।
उस युग मे छपता न छपाता, किसी सूचना का परचा ।।
राजा बोला महामात्य से, चमत्कार देखेगे हम ।
मंत्री बोला ठहरो पहले, पता लगालूं कम से कम ।।
बुद्धिगम्य था विषय न लेकिन, रखा गुप्तचर एक विशेष ।
किसी बात का पता लगाने, में ये होते निपुण हमेश ।।

कपट नहीं छुपा—

निशि के प्रथम याम में पहुँचा, छिपकर बैठा झाड़ी में ।
तीन तत्त्व के सिवा अन्य क्या, बहता कब भी नाड़ी में ।।
अर्धरात्रि के अन्धकार मे, दबे पाँव जन आया एक ।
कोई कुछ करने को आया, लिया दूर से इतना देख ।।
कुछ आकार-प्रकार प्रक्रिया, वररुचि है यह जान लिया ।
क्या करता है इसी बात पर, केन्द्रित अपना ध्यान किया ।।
वररुचि जल में घुसा दबाया, आया ऊपर कोई कर ।
उस पर कुछ रखकर फिर सत्वर, द्विजवर पहुँच गया निजघर ।।

उठा गुप्तचर उस स्थल पर जा, छुपे भेद को जान लिया।
धन रखने पाने की विधि को, भलीभाँति पहचान लिया॥
थैली लेकर हर्षित बनकर, गया सचिव के घर तत्काल।
चर की पूर्ण सफलता पाकर, फूले बहुत-बहुत शकडाल॥
सौम्य! तुम्हारी सूझबूझ पर, हम सबको है गर्व बड़ा।
जनता का भ्रम दूर हटाना, माना जाता पर्व बड़ा॥
सौम्य! प्रशसित होकर निजघर, गया लिया उसने विश्राम।
महामात्य ने सोचा अपना, सफल हो गया सारा काम॥

भडा फूट गया—

अन्य दिनो की भाँति आज भी, गंगातट पर पहुँचे लोग।
आकर्षण का केन्द्र बना था, द्विजकृत स्तुति का नया प्रयोग॥
महाराज श्री नन्द पधारे, आये साथ सचिव शकडाल।
अन्य राज्य अधिकारी भारी, सख्या में पहुँचे तत्काल॥
ऐसा ही लगता था मानों, पहुँच गया है शहर सकल।
वररुचि का दिल आज हर्ष से, बाँसो बाँसो रहा उछल॥
मंत्री ने जो की थी अपमिति, उसको मैं कैसे भूलूं?
आज नरेश्वर भी आये है, इस पर क्यों न भला फूलूं?॥
जय जयकार करेगी जनता, नृपति चमत्कृत होंगे आज।
महामात्य शकडाल स्वयं ही, अनुभव क्यों न करेगे लाज॥
इसी भावना से उठ करके, गंगा स्नान किया डट कर।
जनता का कंधे से कधा, सटा हुआ गगा तट पर॥
मधुर और गंभीर स्वरों में, गगा की स्तुति की प्रारम्भ।
बुरी तरह से फूटा करता, कभी कभी चिर-सेवित दंभ॥
यत्र दबाया पैरो से कर, ऊँचा कर आया नारी का।
अभी अभी थैली आयेगी, स्वर था जनता सारी का॥

हस्त रिक्त था पूर्णतया बस, फैल गया है हाहाकार।
चमत्कार को नमस्कार है अथवा है शत शत धिक्कार॥
वररुचि को यदि काटा जाये, बूंद खून की एक नही।
इतना लज्जित हुआ किसी के, सम्मुख सकता देख नहीं॥

इधर-उधर जल में ही अब वह, लगा ढूंढने थैली को।
ढूंढ़ा करती यथा सहेली, खोई हुई सहेली को॥
रखी हुई थैली कल ही वह, अन्य किसी के हाथ गई।
थैली पाने के बदले बस, पछताने की बात रही॥

महामात्य अब आगे आये, बोले क्या है श्री कविराज!।
नही धरोहर भी लौटाती, कैसे गंगा मैया आज॥
अपने रखे हुए धन से तुम, वञ्चित कभी न होवोगे।
नन्द राज्य में दुखित होकर, आप कहां जा सोवोगे॥

यह लो थैली संभालो जो, प्रतिदिन रखते हाथों से।
जनता को मत भ्रमित बनाओ, अपनी खोटी बातों से॥
सारी बातें स्पष्ट बतादी, कष्ट हुआ द्विज को भारी।
'कीर्ति नष्ट होने से जीवन - गाथा भी लगती खारी॥

यन्त्र उखाड दिखाया जल से, भँडा-फोड़ किया सारा।
कैसे लोग ठगे जाते है, ऐसे धूर्त्तों के द्वारा॥
दड अवश्य तुम्हें दिलवाता, पर तुम हो द्विज जाति विशेष।
पंडित हो इसलिए तुम्हें हम, रहे पूजते यहाँ हमेश॥

जाओ छोड़ दिये जाते हो, सावधान होकर रहना।
समझदार के लिए मारने - से भी बढकर है कहना॥
कल तक जनता जिसे पूजती, आज, उसे धिक्कृत करती।
सत्य समझने कहने मे, वह विद्वानों से कब डरती॥

महामात्य की सूझ-बूझ पर खुश-खुश है जनता राजा ।
नौ दिन तेरह दिन रहती है, जो होती घटना ताजा ॥

बदला लेना है—

क्षुद्र व्यक्ति कब भूला करता, किए गये अपमानों को ।
भद्र व्यक्ति कब भूला करता, लिए नये सम्मानों को ॥
वररुचि ने बदला लेने हित, सोचा कार्यक्रम नूतन ।
महामात्य के दास-दासियों को - फुसलाया देकर धन ॥
दैनिन्दिनी सभी घटनाएँ; वे कहते आ द्विज के पास ।
मुदित मना सुन लेता करता, चिन्तनपूर्वक फिर विश्वास ॥

छिद्र मिल गया—

मिली सूचना उसे एक दिन, श्रीयक का है शीघ्र विवाह ।
उस अवसर पर मगधेश्वर को, बुलवाने की बनी सलाह ॥
उपहृति - योग्य वस्तुओं की बस, घर पर चलती तैयारी ।
राज्य-चिन्ह शुभ छत्र चंवर के, नरपति होते अधिकारी ॥
नये नये अस्त्रो-शस्त्रो का, चालू है निर्माण भला ।
कृति निर्मिति से पृथक नही है, काल प्रयोजन और कला ॥
सुनकर वररुचि ने घटना का, दुरुपयोग कर लिया तुरत ।
कुटिलमना ने कब अपनाया, कष्ट मुक्ति का कोई पंथ ॥

संस्कृत दोहा

न वेत्ति राजा यदसौ, शकटालः करिष्यति ।
व्यापाद्य नन्दं तद् राज्ये, श्रीयक स्थापयिष्यति ॥

अपभ्रंश दोहा

नन्दराय नविजाणई, जे शकडाल करेसि ।
नन्दराय मारिउ करी, सिरिय उ राज ठवेसि ॥

राजस्थानी दोहा

नन्दराय जाणे नही, जो शकडाल करेह।
नन्दराय ने मारने, सिरियो राज ठवेह॥

कृतिगत पद्य

नन्दराय कुछ नही जानता, जो करता मंत्री शकडाल।
नन्दराय को मार श्रियक को, दिया जायगा राज्य विशाल।

प्रचार और प्रसार

पद्य बनाकर दिखा प्रलोभन किया प्रचारित शिशु गण मे।
चलते फिरते खाते पीते, गाते है वे क्षण-क्षण मे॥
गली गली में चौक चौक में, ओक ओक में फैला स्वर।
लोक लोक मे प्रचलित स्वर को, माना जाता एक खबर॥
सुनते छोटे-बड़े ध्यान से, कान लगाकर करते अर्थ।
शिशु-सधवा-मुनि वाणी बोलो, गई आज तक कभी निरर्थ॥
चर्चा होने लगी जोर से, छेड़ेगा मंत्री विद्रोह।
विद्रोही पुरुषों के द्वारा पोषित होता एक गिरोह॥
राजा के कानों तक पहुँची, परिचर्चित पुरजन-वाणी।
कानों के अति कच्चे होते, कलियुग के राजा-राणी॥

अन्तर्द्वन्द्व का शिकार

राजा का मन द्वन्द्वग्रसित हो, लगा उठाने बहुत विकल्प।
राज्य लोभ मे होते आए, ऐसे ही तो कांड अनल्प॥
संभव है शकडाल सचिव भी, कर डाले ऐसा अन्याय।
पाप घटित हो जाने पर फिर, लग सकता है नही उपाय॥
स्वामिभक्त शकडाल सदा से, कर सकता अन्याय नही।
होनहार ही ऐसा हो तो, उसका अन्य उपाय नही॥

है षड्यन्त्र किसी पापी का, समझदार है सचिव महान ।
समझा जिसे आज तक मैने, मगधराज्य का प्राण समान ॥
नीद न आती काम न भाता, नाम ठाम भी रहा न याद ।
अपने मन से अपने मन का, माना जाता बुरा विवाद ॥
भला-बुरा जो भी हो निर्णय, जो ले लेता है तत्काल ।
उस मानस मे खड़ा न होता सकल्पों का जटिल सवाल ॥
विश्वसनीय व्यक्ति को भेजू , पता लगाऊँ इस स्थिति का ।
सम्भव है बढना-घटना ज्यों, पक्षान्तर्गत हर तिथि का ॥

बात सही है

गया चतुर नर मत्री के घर देख रहा है सारा हाल ।
सदेहास्पद नर होता तो, वे ही देते उसे निकाल ॥
भेट स्वरूप दिए जाने को, जो भी बनवाया सामान ।
उसे सुरक्षित रखवाते थे, गिन गिन करके अच्छे स्थान ॥
गया व्यक्ति राजा के सम्मुख, आंखो देखा हाल कहा ।
भ्रम भी हो सकता है ऐसे, सुनकर शांत नृपाल रहा ॥
सहसा कोई कदम उठाना, नीति विरुद्ध गया माना ।
इतने ही मे महामात्य का, हुआ वही पर ही आना ॥
किया नित्य की भाति सचिव ने, मगधेश्वर का अभिवादन ।
राजा ने मुँह फिरा लिया है, प्रसन्नता का प्रतिताडन ॥

सचिव की बुद्धिमत्ता

रुका न क्षण भर स्वर न निकाला, निकला राज्य सभा से आप ।
घर पर आकर श्रीयक से सब, वृत्त सुना डाला चुपचाप ॥
मेरी स्वामिभक्ति पर नृप का, टूट गया है अब विश्वास ।
सभव है इसके कारण वे, करवादे इस घर का नाश ॥

कुलरक्षण के लिए नन्द के, सम्मुख मेरा काटो सर।
तो संभव है बच जायेगा, जीवित और सुरक्षित घर ॥
चाहे पिता पुत्र हो भ्राता, स्वामिभक्ति से जो हो दूर।
उसको जीवित रहने देना, नही किसी को है मंजूर ॥
तेरी स्वामिभक्ति से राजा, फिर हो जायेगा संतुष्ट।
असंतुष्ट ही रह जायेंगे, मगध राज्य के सारे दुष्ट ॥
सुनकर श्रीयक बना अचंभित, स्तंभित रहा वही तत्काल।
बोला पूज्य पिताजी ! ऐसा, कार्य न कर पाता चाण्डाल ॥
मुझसे ऐसा कार्य न होगा, जो होगा सो होगा जी।
ऐसे कैसे राजी होंगे, धोकेंगे हम गोगाजी ॥
है आपातकाल यह बेटा, सोचो धर्म-अधर्म नही।
आत्म-सुरक्षा कर लेने में, मानी जाती शर्म नही ॥
अगर एक मेरे मरने से, बच जाता पूरा परिवार।
इससे बढ़कर धर्म कौन-सा, उसका कैसा है आधार ॥
देकर प्राण धर्म का पालन, मैं करता हूं तन मन से।
लेकर प्राण धर्म का पालन, तू करता है कण-कण से ॥
ऐसे समझाकर श्रीयक को, लेकर साथ सचिव आया।
नन्दराज के सम्मुख सविनय सविधि प्रणाम करूं गाया ॥

श्रीयक ने ले खड्ग पिता का, वही काट डाला है सर।
यह क्या हुआ
कहा नन्द ने श्रीयक ऐसे, रहा यहाँ पर यह क्या कर ? ॥
श्रीयक बोला शासनद्रोही - की ही हत्या करता हूँ।
ऐसा करने से मैं राजन्, नही किसी से डरता हूँ ॥
शकित स्वर से नरवर बोला, क्या थे मंत्री विद्रोही।
हां महाराज ! सचिव जीवन भर, विद्रोही के विद्रोही ॥

लौकिक सत्य नही वह होता, जो होता वास्तव में सत्य ।
लोक जिसे सच माना करते, लौकिक सत्य वही अवितथ्य ॥
स्वामिभक्त थे पूर्णतया वे, नृप ने विद्रोही माना ।
वे विद्रोही ठहर गये बस, इसमें तथ्य छिपे नाना ॥
रोष और आश्चर्य दिखाकर, मगधेश्वर ने कहा तुरंत ।
क्या तेरे घर अस्त्रशस्त्र की, निर्मिति होती थी अत्यन्त ॥
राज्यद्रोह की तैयारी का, माना जाता क्या न निशान ।
छत्र चँवर तो राज्यचिन्ह है, नही घरेलू है सामान ॥

बात ऐसी थी

श्रीयक बोला-पाणिग्रहण के, अवसर पर था एक विचार ।
महाराज को बुलवायेंगे, देंगे नये नये उपहार ॥
कभी एक दो शस्त्रों से क्या, द्रोह और विप्लव होता ।
जो सिखलाया गया न उससे, अधिक कभी कहता तोता ॥
अस्त्रों का उद्देश्य यही था, अफवाहे थी पूर्ण असत्य ।
अधे नर ने कभी न देखा, प्राची दिशि का उदितादित्य ॥

सच्चाई सामने आई

आंखे खुली नरेश्वर की अब, श्रीयक पर विश्वास हुआ ।
हाय हमारे हाथों ही से, श्रेष्ठ सचिव का नाश हुआ ॥
आंसू छलक पड़े आंखों मे टूट गया धीरज दिल का ।
चोर खयाल किया करते कब, बाहर लगी हुई सिल का ॥
श्रीयक रोने लगा साथ मे, पितृशोक कब होता स्वल्प ।
शोक हर्ष के भाव वही है, चाहे हो कोई सा कल्प ॥

लोक वाणी और सम्मान

लोगों ने जाना घटना को किया सभी ने शोक महान ।
बहुत देर से होता है जी, असलीयत का पूरा ज्ञान ॥

सचिव बड़े शासन प्रेमी थे, राज - धर्म - नीतिज्ञ विशेष ।
किसने जाना महापुरुष यों, होगे सुत के कर से शेष ॥
राजकीय सम्मान सहित सब, अन्त्य क्रियाएं की संपन्न ।
वररुचि का षड्यन्त्र सकल अब, रहा नही किंचित प्रच्छन्न ॥

दोहा

पूर्ति और भावना

लिखा बहुत सभाल कर, मैंने यह शकडाल ।
एक बार आश्चर्य में, देगा सबको डाल ॥
क्या से क्या होता घटित, अघटित सारा कार्य ।
इसीलिए अध्यात्म पर, बल देते जन आर्य ॥
बादल प्रतिपल में यथा, बदला करते अंग ।
रंग बदलता देखिये, अंगी का निज अग ॥
अड़ना भिड़ना है बुरा, बात दूसरी साथ ।
रहो साथ मे बन यथा, दायां बायां हाथ ॥
पद्य-प्रेम की प्रेरणा, लिखवाती है पद्य ।
तुल पायेगा क्या कभी, सरस पद्य से गद्य ॥
रायचूर चौमास में, साता रही विशेष ।
द्रव्य क्षेत्र का क्यो नही, है उपकार हमेश ॥
काल भाव ने भी दिया, मुझे पूर्ण सहयोग ।
बने प्रभावित इसलिए, सारे श्रावक लोग ॥
पाठक चिर जीवित रहे, पढे धर्म - इतिहास ।
जैनधर्म का स्थिर रहे निर्मल नव्य प्रकाश ॥

हितैषियों के द्वारा आने, लगे वहां उपहार नये ।
ऐसे कोई नहीं बचे जो, हर्ष मनाने नही गये ॥

चुगली और पूछताछ

कहा किसी ने भद्रबाहु जी, आये नही यहाँ पर है ।
क्यो आये जी उनको कोई, राजाजी का कुछ डर है ॥
चुगली खाने वाले खाते है, बस उनका काम यही ।
अगर न अस्त सूर्य होता तो, हो सकती भी शाम नही ॥
राजा ने कारण पुछवाया, सचिव भेज करके अपना ।
सत्य समझने मे उपयोगी, कभी नही होता सपना ॥

भ्रम निवारण

कहा सचिव से भद्रबाहु ने, बोलो हम क्या आये जी ।
और नही आने का कारण, कैसे फिर बतलाये जी ॥
जिस सुत की वय मात्र सात दिन, उसको आ क्या दें आशीष ।
बिना दिए आशीष नृपति से, पाई जाए क्या बक्सीस ॥
बोला सचिव उम्र अगज की, जन्म पत्र में है सौ साल ।
पंडित विज्ञ वराहमिहिर जी, जो लाए थे नया निकाल ॥

मौत का निमित्त

भद्रबाहु स्वामी यों बोले, बिल्ली से है इसकी मौत ।
इसमे संशय नही जरा भी, इसे न माना जाए तौत ॥
हम दोनो के कथानकों का, समझो यही परीक्षण-काल ।
जाओ राजा से कह देना, रखिए अगज की सम्भाल ॥

भावी नहीं टलती

सुनकर नृप ने राजमहल से, सभी बिल्लियाँ हटवा दी ।
शकाओं की जड़े मूलयुत, इधर उधर से कटवा दी ॥

आयाओं के सरक्षण में, पुत्र पा रहा संवर्द्धन।
बैठी उसे पिलाने को पय, रख गोदी में सुत-गर्दन ॥

मुख्यद्वार की बनी अर्गला, बिल्ली की आकृतिवाली।
नही किसी ने ऐसा जाना, यह इस पर गिरने वाली ॥

कीली निकल गई थी उसकी, वह ढीली हो गिरी तुरन्त।
सात दिनों के राजपुत्र का, हुआ उसी से तत्क्षण अन्त ॥

शोक और श्रद्धा

समाचार सुनकर महलों में, सन्नाटा छाया तत्काल।
राजा बोला होनहार को, कोई कैसे सकता टाल ॥

भद्रबाहु स्वामी पर श्रद्धा, राजा की बलवती बनी।
सम्मानित होते है देखो, सत्य ज्ञान के परमधनी ॥

वराहमिहिर की मृत्यु

लज्जित बना वराहमिहिर अब, चला नृपति का आश्रय छोड़।
वह कैसे मुँह दिखला सकता, जो नर रखकर हारा होड़ ॥
बना वराहमिहिर मर व्यन्तर, जैनो से विद्वेष लिये।
बदला लेने की इच्छा से, इसने अति उपसर्ग किये ॥

स्तोत्र और साहित्य

स्तोत्र श्रेष्ठ "उवसग्गहर" तब, भद्रबाहु ने रच डाला।
शीतल जल उत्सेचन से क्या, शांत नही होती ज्वाला ॥
मिटा उपद्रव श्री संघों का, स्तोत्र प्रभाव दिखाता है।
पाँच इग्यारह सतावीस पद-वाला यह कहलाता है ॥
सूत्र दशाश्रुत स्कंध बनाया, कल्पवृहत् व्यवहार भला।
कल्पसूत्र से जानी जाती, सूत्रग्रथन की श्रेष्ठ कला ॥

आवश्यक निर्युक्ति आदि दश, रचनाएँ है सुन्दरतम ।
सवालक्ष प्राकृत भाषा में, है वसुदेव चरित सत्तम ॥
भद्रबाहु सहिता ज्योतिष का, ग्रन्थ पवित्र बना भारी ।
जिसमे जन्मपत्रियाँ जग की, पाई जाती है सारी ॥

द्वादशवर्षीय दुष्काल

एक समय दुर्भिक्ष भयकर, पड़ा यहाँ द्वादशवर्षीय ।
निभना कठिन होगया उससे, श्रमणों का जीवन सधीय ॥
मर्यादाएँ साधु-धर्म की, होने लगी शिथिल तत्काल ।
श्रमणसघ के सम्मुख आया, माधुकरी का सूक्ष्म सवाल ॥
श्रम स्वाध्याय नही हो पाते, मिलता जब आहार नही ।
जब आहार नही मिलता तब, होता पाद-विहार नही ॥
होता पाद विहार नही जब, होता धर्म-प्रचार नही ।
होता धर्म प्रचार नही तब, रहता एक विचार नही ॥
रहता एक विचार नही तब, आस्थाए मर जाती है ।
शक्ति बिखर जाती सघों की, प्रभावना गिर जाती है ॥

दुष्काल[1] का प्रभाव

भूखो मरते हुए साधुजन, गये स्वर्ग में करके काल ।
अर्ध बुभुक्षित श्रमण नही, कर पाए सुख से श्रुत सभाल ॥
हुई ज्ञान की हानि बहुत ही, बच न सके विद्वान बड़े ।
तूफानो को सह सकते क्या, सारे पादप खड़े-खड़े ॥
दक्षिण मे जो चले गए थे, वे कुछ ही बच पाये सन्त ।
समय बीतने पर आता है, आये हुए कष्ट का अन्त ॥

नोट—महायोगी स्थूलिभद्र के चरित्र मे उपराङ्कित प्रासगिक वर्णन आया है ।

आगम की वाचना

बीता समय सुभिक्ष हुआ जब, मिले परस्पर सन्त विशिष्ट ।
जिनागमों की प्रथम वाचना, करनी लगी सभी को इष्ट ॥
शहर पाटली पुत्र मनोहर, मिला वहाँ पर सारा संघ ।
किए व्यवस्थित पूर्णतया बस, सकल संघ ने ग्यारह अंग ॥
बारहवाँ जो अंग बचा था, भद्रबाहु थे उसके ज्ञाता ।
वे नेपाल देश मे थे, तब महाप्राण के संध्याता ॥
किया संघ ने विनय, पढ़ा दो, स्थूलिभद्र को यह शेषांग ।
पढ़ा दिए दश पूर्व प्रेम से, अर्थ सहित सत्वर पूर्णांग ॥

विघ्न हो गया

बहने स्थूलिभद्र की आई, भाई के दर्शन करने ।
गई गुफा में देखा हरि को, लगी सभी वे तो डरने ॥
भाई कहाँ ? यहाँ हरिवर है, आई वापस गुरु के पास ।
गुरु ने देखा स्थूलिभद्र ने, किया कुतूहल धर उल्लास ॥
रूप बदल विस्मय उपजाया, हुआ इसे यह ज्ञानाजीर्ण ।
ऐसा व्यक्ति नहीं हो पाता, ज्ञानार्णवतट पर उत्तीर्ण ॥
गुरुजी बोले-जाओ तुमको, वही मिलेगा अब भाई ।
रख गुरु के वचनों पर श्रद्धा, सातों बहनें फिर आई ॥
वदन कर सुख प्रश्न पूछ कर, आई जैसे पुन· चली ।
भ्रातृ-दर्शनों की इच्छा बस, श्री गुरु कृपया शीघ्र फली ॥
स्थूलिभद्र मुनि अब आये है, लेने को आगे का ज्ञान ।
गुरु ने कहा—ज्ञान क्या लेगा, तुझे ज्ञान का है अभिमान ॥
कल क्यों बना केशरीसिंह तू, इसीलिए क्या ज्ञान पढ़ा ।
डरकर भागी बहने तेरी, देखा हरि को सहज बढ़ा ॥

जाओ, नही मिलेगा-वाचन, सिद्ध हुए तुम पात्र नही ।
मेरी इस कक्षा के लायक, मुझे मिलेगा छात्र नही ॥

संघ का पुनर्विनय

सुना सघ ने जब यह किस्सा, गया विनय ले गुरु के पास ।
कृपा करो, गुरुदेव ! करा दो, जो कुछ शेष रहा अभ्यास ॥
देख सघ का आग्रह गुरु ने, कहा सिर्फ सिखलादू पाठ ।
अर्थ नही बतलावूंगा मै, घड़ा न जाये कोई घाट ॥
शेष पूर्व सिखलाये सारे, सूत्ररूप पर अर्थ नही ।
गुरु ने सोचा-इस कलियुग मे, होगे शिष्य समर्थ नही ॥

दोहा

थे अतिम श्रुतकेवली, भद्रबाहु भगवान ।
स्थूलिभद्र को मिल गया, मात्र पाठ का ज्ञान ॥
भद्रबाहु का भक्त था, चन्द्रगुप्त सम्राट ।
पौषध मे देखे सपन, जिसने बहुत विराट ॥
भावी पचमकाल का, था उनमें निक्षिप्त ।
भद्रबाहु ने था कहा, फल उनका संक्षिप्त ॥

राधेश्याम

चन्द्रगुप्त की दीक्षा

चन्द्रगुप्त ने गुरुवाणी सुन, संयमव्रत स्वीकार किया ।
व्रताराधना विधियुत करके, आत्मा का उद्धार किया ॥
ग्रन्थ तिलोयपन्नत्ति मे यह, सारा वर्णन आता है ।
सुज्ञ पढ़ेगे और वढेगे, जिन्हे ज्ञान रस भाता है ॥
भद्रबाहु का स्वर्गवास स्थल, माना उज्जैनी के पास ।
इकशत सत्तर वर्ष बाद में, ऐसा कहता है इतिहास ॥

भद्रबाहु स्वामी की पदरज, वंदनीय है त्रिकरण से।
ज्ञान सूक्ति फल पाये जाते, ज्ञानार्णव में विचरण से ॥

पूर्त्ति और आशंसा

अमर गच्छ के तारक गुरु का, शिष्य शुभकर 'पुष्कर' है।
गुरुचरणों की कृपा प्राप्त हो, तब न कार्य कुछ दुष्कर है ॥
अठावीस दो सहस साल शुभ, सूरत मे हम आये जी।
रचना नई बना करके मन, खुशियाँ यहाँ मनाये जी ॥
लाभ मिलेगा इससे जग को, ऐसी है मन की आशा।
गुण लेने देने को रहता, प्राज्ञ जनों का मन प्यासा।

7

महायोगी स्थूलिभद्र

राधेश्याम

मंगल में स्थान

शालिभद्र सा भोगी, योगी, स्थूलिभद्र सम अन्य नही ।
वर्षा ऋतु के बिना अन्य ऋतु, दे पाती पर्जन्य नही ।।
श्री जिनशासन के उज्वलतम, माना गया इन्हे नक्षत्र ।
श्लोक[1] मांगलिक में इनका ही, नाम हमे मिलता सर्वत्र ।।

दोहा

हुआ नही श्रुतकेवली, कोई इनके बाद ।
स्थूलिभद्र की जीवनी, जिनशासन को याद ।।
ब्रह्मचर्य की साधना, इनकी रही कठोर ।
कोशा वेश्या भी इन्हे, कर न सकी कमजोर ।।
वेश्या को भी श्राविका, गये बना कर आप ।
व्रताचरण से जीव के, धुल जाते सब पाप ।।
इनकी स्तवना से हमे, मिलता है आनन्द ।
होने देना है नही, द्वार ज्ञान का बन्द ।।

---

१ मगल भगवान् वीरो, मगल गौतम प्रभु. ।
मगल स्थूलिभद्राद्या., जैनधर्मोस्तु मगलम् ।।

राधेश्याम

पूर्व-पीठिका

मगधाधिप श्री नन्दराय के, सचिव-पुत्र कहलाते आप ।
औदासीन्य लिए जीते थे, अपने यौवन को चुपचाप ॥
सांसारिक सुख भोगों के प्रति, यौवन का मुख नही मुड़ा ।
मानो एक विहंगम अपना, नीड़ छोड़ कर नही उड़ा ॥
लौकिक गति का ज्ञान कराने, भेजे इनको कोशा पास ।
उसके द्वारा किया गया ही, रहा सफलतम सकल प्रयास ॥
कोशा इनके सिवा किसी से, रखती कुछ संबंध नही ।
इनको इसके बिना कही पर, मिल पाता आनन्द नही ॥
विषय-भोग मे लिप्त हो गए, उदासीनता भाग चुकी ।
सोई हुई तरुणिमा सारी, कोशा द्वारा जाग चुकी ॥
धन जितना भी था आवश्यक, होता महामात्य से प्राप्त ।
अन्य विषय की चिन्ताएँ सब, धन कर देता स्वतः समाप्त ॥

भोगी से योगी

महामात्य की मृत्यु हुई जब, नन्दराय ने वुलवाया ।
पितृ-मृत्यु का कारण जाना, जानी झूठी जग माया ॥
जाग उठे संस्कार पुराने, पद लेना भी ठुकराया ।
त्यागे भोग, योग का रास्ता, समझ वूझ कर अपनाया ॥

दीक्षा और अभ्यास

भद्रबाहु आचार्यदेव के, गुरुभ्राता के पास गये ।
श्री सभूतविजय गुरुवर को, प्राप्त हो रहे शिष्य नये ॥
गुरुवर ! श्री चरणों में मुझको, दीक्षित करले आज सहर्ष ।
कभी कभी ही आया करता, आत्मभावना मे उत्कर्ष ॥

स्थूलिभद्र अब साधु हो गये, करने लगे आगमाभ्यास ।
आगमज्ञान अनत बताया, होता यथा अनन्ताकाश ।।
पावन एकादश अगों के, बने स्वय निष्णात महान ।
उसे योग्यता ने स्वीकारा, जिसने पाया ऊँचा ज्ञान ।।

चातुर्मास के लिए

शेषकाल मे साधु सभी ही, करते स्वेच्छा सहित भ्रमण ।
वर्षावास बिताने की ले, इच्छा पहुँचे तीन श्रमण ।।
अपनी रुचिपूर्वक गुर्वाज्ञा, लगे मांगने तीनों सन्त ।
अपने तप-जप-ज्ञान मौन का, कठिन समझते स्वीकृत-पंथ ।।
(एक) चार मास तक ध्यानमग्न हो, सिह गुफा पर रहूँ खड़ा ।
इसको ही मैने मेरे हित, माना नव्य प्रयोग बड़ा ।।
(दूसरा) निराहार निर्जल रहकर मैं, अहि बांवी के पास रहूँ ।
कायोत्सर्ग साधना द्वारा, अपने को उत्कृष्ट कहूँ ।।
शिष्य **तीसरा** बोला मैं तो, रहूँ कूप के मांडे पर ।
ध्यानमग्नता भग्न नही हो, चाहे हो कितना ही स्वर ।।
(चतुर्थ) स्थूलिभद्र भी हुए उपस्थित, दयानिधे ! जो दे आदेश ।
तो कोशा वेश्या के घर पर, वर्षावास बिताऊँ एष ।।
कामोद्दीपक चित्रों से ही, सजी हुई उसकी शाला ।
वही बैठकर ध्यान लगाकर, जपूं जिनेश्वर की माला ।।
षड्रस व्यजन आहारी बन, काम-विजय कर पाऊं मैं ।
चार मास का समय सविधि, गुरु-आज्ञा सहित बिताऊँ मैं ।।

उपयोग सहित आदेश

सुना सुगुरु ने ज्ञानयोग से, जाना है उपकार विशिष्ट ।
चारों को दे दी है आज्ञा कार्य क्लिष्ट कुछ कुछ अक्लिष्ट ।।
सभी शिष्य वाञ्छित स्थानो पर, गये बिताने चातुर्मास ।
तप जप ज्ञान क्रिया संयम पर, रखते थे अपना विश्वास ।।

सिह, सर्प, कूएँ का माँड़ा, बने निरापद तप बल से।
क्या न परस्पर भिड़ते अड़ते, पशु मानव खग खल खल से॥
स्थूलिभद्र मुनि कोशा के घर, पहुँचे माँगा है आवास।
वेश्या लगी नाचने छाया, अंग अंग मे हर्षोल्लास॥
खोया हुआ खजाना पाकर, पुरुष मनाता जैसे हर्ष।
स्थूलिभद्र प्रेमी को पाकर, वेश्या ने पाया सुख-स्पर्श॥
बोली आओ आओ स्वामी ! मै दासी तैयार हमेश।
किसके उपदेशों से पहना, क्लेश प्रपूरित मुनिजन वेष॥
मैं क्या आज्ञा दूं ? आज्ञा तो, देकर आप कृतार्थ करे।
प्रेम वही है स्थान वही है, मै हूँ वही न आप डरें॥
बोले ! मुनिवर यहाँ ठहरने की, अनुमति तो करो प्रदान।
बिना स्थान के कैसे किसको, सत सुनायेगे व्याख्यान॥
कोशा ने अनुमति दे दी बस, जमा लिया मुनि ने आसन।
सुनने वाले आने से ही, मुनिजन देते है भाषन॥

डिगाने के उपाय

माधुकरी के समय खिलाया, षड्रसपूरित श्रेष्ठाहार।
कोशा ने श्रृंगार सजाया, मानो आज दूसरी बार॥
मुनि के सम्मुख नृत्य दिखाने, मानो रति ही उतर पड़ी।
काम जगाने को गाती थी वदल बदल कर नई कड़ी॥
हाव-भाव-भ्रूभंग अंग के, रग ढंग थे काम सने।
वेश्या सोच रही थी कैसे, मेरा चाहा काम बने॥
हे प्राणों के प्राण ! नाथ ! सुन-बात आप कुछ ध्यान धरें।
विरहातुर व्याकुल नारी की, नाड़ी का कुछ ज्ञान करे॥
अधरामृत का पान करा दो, चरणों की दासी प्यासी।
मैं भी समझ रही हूँ आये, आप बडे योगाभ्यासी॥

काम युक्ति है, काम मुक्ति है, काम योग है काम कला।
त्याग काम का कर देने से, नही किसी का काम चला॥
मुझे चाहने वाले आते, नही चाहती मैं उनको।
काष्ठ चाहने वाले कैसे, लेंगे साथ लगे घुन को॥
मेरी यही चाहना है बस, आप मुझे चाहे मन से।
मुझे प्रेम है, केवल अपने स्थूलिभद्र के जीवन से॥
डोले नही नही बोले कुछ, खोले अपने नेत्र नही।
सोया मुनि के विचरण लायक, कामदेव का क्षेत्र नही॥
मूर्च्छन स्पर्शन प्रलपन चुम्बन, आलिगन का असर नही।
कामुक चेष्टाएँ करने में, कोशा रखती कसर नहीं॥
उग्र प्रयत्नों के सम्मुख भी, काम विमुख मुनिराज रहे।
तूफानों के समय यथास्थित, खड़ा हुआ गिरिराज रहे॥
काम काम को जगा न पाता, जीवित रहता काम नही।
जगकर क्रोध शांत हो जाता, जो ले उसका नाम नही॥
जिसकी धारा प्रबल उसी में, मिलती है निर्मल धारा।
मूसलधार कही जाती है, बल वाली जो जलधारा॥
चातुर्मास समाप्त हो गया, डिगा न पाई मुनि मन को।
प्रभव चोर भी चुरा न पाया, जम्बूस्वामी के धन को॥

कोशा झुक गई

आप काम-विजयी है प्रभुवर! क्षमा करे करुणासागर।
कष्ट दिया है सदा आपको, भग साधना मे कर-कर॥
नही श्राविके! आत्म-साधना, दृढ़ता मे अभिवृद्धि हुई।
तेरे स्तुत्य प्रयासों से ही, मेरी संयम-सिद्धि हुई॥
उपकृति को अपकृति कहने का, साहस नही किया जाता।
जिससे लिया समय पर उसको, लाकर हर्ष दिया जाता॥

समझाया श्री स्थूलिभद्र ने, धर्म गृहस्थाश्रम वाला ।
स्वाद धर्म का उसने पाया, जिसने सविधि उसे पाला ॥
बनी श्राविका कोशा व्रतविधि, धारण की है मुनि मुख से ।
मानो वह संतप्त हो चुकी, विषयजन्य दु.खमय सुख से ॥

दुष्कर अति दुष्कर

वे तीनों मुनि गुरु-चरणों मे, हुए उपस्थित आकर के ।
आसन से कुछ उठ सम्मानित, किये उन्हें गुन गाकर के ॥
दुष्कर कार्य किया है तुमने, स्वागत योग्य साधना की ।
प्रभावना की जिनशासन की, मुनिमण्डल में शोभा ली ॥
पहुँचे स्थूलिभद्र जब गुरुवर, उठकर खडे हुए तत्काल ।
दुष्कर अतिदुष्कर बतलाकर, स्वागत करने लगे विशाल ॥

ईर्ष्या की आग

तीनो मुनि सुन जले हृदय में, अति दुष्कर क्या काम किया ।
वेश्या की शाला मे वसकर, चार मास आराम किया ॥
खाया षट्रस पीया मधुरस, पुष्ट बनाया अपना अंग ।
यही प्रमाणित करता मुख पर, छाया हुआ गुलाबी रग ॥
कृशता नही दृष्टिगत होती, फिर भी किया बड़ा सम्मान ।
सचिव-पुत्र होने के नाते, गुरु भी देते ऊँचा स्थान ॥
मन की ईर्ष्या और जलन को, प्रगट नही करते मतिमान ।
इन्तजार करते अवसर की, जिसकी किसे किसे पहचान ॥

अहंकार की भड़क

अगला चातुर्मास बिताने का, जब अवसर आता है ।
सिंह-गुफावासी मुनि आकर, गुरु के सम्मुख गाता है ॥
दो आज्ञा कोशा वेश्या के, घर पर चातुर्मास करू ।
अति दुष्कर कहने का मतलब, समझूं एक प्रयास करू ॥

गुरु बोले—वह स्थूलिभद्र था, वहाँ तुम्हारा काम नही।
भय है मुझको जा करके तुम, हो जावो बदनाम नही॥
क्या बोले गुरु! ऐसा क्या है, दो आज्ञा क्यों सकुचाते।
लो हम आज्ञा लिए बिना ही, पावस हेतु वहाँ जाते॥
ईर्ष्या और अह मिल करके, क्यों न करेंगे मुनि को भ्रष्ट।
अगले पद्यों द्वारा इसका, आशय हो जायेगा स्पष्ट॥

पतन रुक गया

पहुँचा कोशा वेश्या के घर, सिह-गुफा वाला वह संत।
कोशा ने कर वन्दन पूछा, जो हो सेवा कहो भदन्त!॥
स्थूलिभद्र की भांति तुम्हारी, शाला में ही चातुर्मास।
करने की अनुमति देदो बस, सेवा यही यही अभिलाष॥
कोशा ने परखा मुनि के मन, ईर्ष्या की है जलन बड़ी।
अनुमति देदी, मुनिवर ठहरे, बीती है दो-चार घड़ी॥
माधुकरी में षट्रस भोजन, भाव भक्ति से दिया गया।
तदनन्तर शृंगार सजाकर, प्रथम परीक्षण किया गया॥
विचलित-पथ मुनि लगे मांगने, उससे सह्य प्रणय की भीख।
ऐसे क्षण में याद न रहती, गुरु की सयममय शुभ सीख॥
कोशा ने मुनि की रक्षा हित, खोजा एक उपाय विशेष।
बोली—हे मुनि! हम होती है, धन की चेरी क्या न हमेश?॥
जो प्रणयार्थी हो वह घर मे देकर, द्रव्य प्रवेश करे।
विना द्रव्य के कायिक वाचिक, कौन मानसिक क्लेश करे॥
मुनि कामान्ध बना था बोला, मैं हूँ अवश दया कर दो।
लिए हमारे नियम द्रव्य का, आया और गया कर दो॥
आगे बढ़े चरण छूने को, वेश्या ने फटकारा है।
तोड़ें आप नियम पर मैंने, नियम सुदृढ स्वीकारा है॥

एक उपाय वता सकती हूं, जाओ जो नेपाल प्रदेश ।
सन्त नवागत को देते है, रत्नकबली स्वयं नरेश ॥
वह ले आओ तो, कहते ही, मुनि ने उठकर किया विहार ।
प्रणयार्थी सब कुछ करने को, रहते है बस, सदा तैयार ॥
गए त्वरित नेपाल नृपति से, प्राप्त किया है वसुकबल ।
प्रणयार्थी मे पाया जाता, अतुलित प्रबल काम का बल ॥
लौटे पाटलिपुत्र दिया है, कोशा को नूतन उपहार ।
धन मिष से अब मेरे मन को, करलो प्रेम सहित स्वीकार ॥

शिक्षा देने का ढंग

कोशा ने टुकड़े-टुकड़े कर, फेका गन्दी नाली में ।
मुनि निजरोप दिखाते बोले, हो तुम किस खुशहाली में ॥
कितने श्रम से पाया कंबल, तुम क्या जानो भेद भला ।
स्वेद वहाया मैने उसका, तुम्हे न आया खेद भला ॥
छिपी मूढ़ता हुई प्रदर्शित, भले-बुरे का तुम्हें न ज्ञान ।
सुनते ही वेश्या बोली यूं, मेरे से तुम मूर्ख महान ॥
संयमरत्न अमूल्य आप क्यों, गँवा रहे, हो विषयासक्त ।
कल्प कलंकित करने जाते, वांछनीय कब होता त्यक्त ॥
धिक्कृति योग्य आप हैं या मै, सोचो जरा खोलकर नेत्र ।
संयमधारी पुरुषो द्वारा, है अस्पृश्य काम का क्षेत्र ॥
मुनि बोले तुम धन्य - धन्य हो, बचा लिया है गिरने से ।
हार हुई है आज करारी, तेरे यहाँ विचरने से ॥

गुरुजी के पास

लज्जित होते हुए शीघ्र ही, पहुँचे अपने गुरु के पास ।
प्रायश्चित्त लिया समुचित, कर आलोचन दोषों का खास ॥

अतिदुष्कर कृति करने वाले, स्थूलिभद्र श्री योगीराज।
उस दिन माना नही परख कर, मान लिया है मन ने आज ।।

वाचना का प्रसंग

श्री सभूतविजय के होते, हुए एक दुर्भिक्ष पड़ा।
उस बारह - काली का कटना, हुआ सभी के लिए कड़ा ।।
हुए दिवंगत श्रुतधर मुनिवर श्री आचार्य प्रवर गुणधर।
अन्य अनेकों अन्य प्रदेशो मे पहुँचे है विहरण - कर ।।
जो मुनि वापिस लौटे उनने, संकट सहन किए भारी।
श्रुत की स्मृति रख पाने मे थी, बहुत बड़ी ही लाचारी ।।
किसको कितना याद रहा है, लगे पूछने आपस में।
मुनियों का कुछ दोष नही था, दोष समय का था इसमें ।।
बृहद् वाचत्ता आयोजित की, गई संघ द्वारा तत्काल।
ध्यान साधना हेतु गए वे भद्रबाहु स्वामी नेपाल ।।
अध्यक्षता हुई थी इसकी, स्थूलिभद्र स्वामी द्वारा।
यथातथ्य सकलन कराया, ग्यारह अगो का प्यारा ।।
लेकिन चौदह पूर्व याद हो, ऐसा मुनि वहाँ एक नही।
दृष्टिवाद के बिना पूर्णता, की रख पाते टेक नही ।।
केवल भद्रबाहुस्वामी, कहलाते श्रुत-केवलधारी।
उन पर सकल संघ की आँखे, लगी हुई थी अति प्यारी ।।

स्थूलिभद्र को भेजा

श्रमण पचशत देकर भेजा, स्थूलिभद्र को उनके पास।
चौदह पूरव पढ आने का, एक तुम्हारे पर विश्वास ।।
स्थूलिभद्र पहुँचे हैं सविनय, प्रगट सुनाई अभिलाषा।
परंपरा अक्षुण्ण रहे यह, ढाला इसीलिए पासा ।।

सात वाचनाएँ नित दूंगा, भद्रबाहु ने मान लिया।
विनयवान शिष्यों ने ही निज गुरुचरणो से ज्ञान लिया॥

बिन्दु दिया है, सिन्धु रहा है

अन्य श्रमण थक गये सभी वे, पाटलिपुत्र चले आये।
केवल स्थूलिभद्र थे ऐसे, जमकर स्थिरमन रह पाये॥
मन तो उचटा नही तुम्हारा, भद्रबाहु ने पूछ लिया।
भरा न उचटा मन, प्रभु! लेकिन, ज्ञान अभी तक अल्प दिया॥
मेरी ध्यान-साधना देखो, पूरी होने वाली है।
उसके बाद बचेगा मेरे-पास समय शुभशाली है॥
शेष रहा है कितना गुरुवर! विन्दु दिया है, सिन्धु रहा।
सुनकर बढते रहे स्थूलि मुनि, बढ़ता जैसे इन्दु रहा॥
युग्म वस्तु कम दश पूर्वो का, ज्ञान कर लिया पूरा प्राप्त।
महाप्राण की उग्र साधना, गुरु की रही नही असमाप्त॥

पाटलिपुत्र पधारे

भद्रबाहु नेपाल देश से, पाटलिपुत्र पधार रहे।
सभी नागरिक गुरुदेवो का, शुभागमन सत्कार रहे॥
सघ समूचा अति हर्षित है, पा करके आचार्य महान।
महाप्राण की महा साधना, मानी जाती थी असमान॥
ठहरे आप शहर के बाहर, उपवन का था स्थान विशाल।
यक्षा[1] आदि साध्वियां आई, वन्दन करने को तत्काल॥
कहाँ हमारे भ्राता मुनिवर, उनको भी वन्दन करले।
भाई ज्ञानी और संयमी, प्रेम भावनाएँ भरले॥

---

१ सात बहनें थीं—१ यक्षा, २ यक्षदत्ता, ३ भूता, ४ भूतदत्ता, ५ रेणिका (सेना), ६ रेणा, ७ वेणा।

दूर स्थित उस जीर्ण चैत्य मे, करते वे स्वाध्याय विशेष ।
जाओ वहाँ वन्दना करलो, लिए तुम्हारे यह आदेश ।।
गई साध्वियाँ उनको आते, स्थूलिभद्र ने देख लिया ।
चमत्कार इनको दिखलाऊँ, मुनि ने चिन्तन एक किया ।।
ये समझेगी भाई साधक, विद्याधारी बहुत बड़ा ।
विद्या अह-विवर्जित हो यह, कथन सरल आचरण कड़ा ।।
रूप सिह का बना द्वार पर, बैठे बड़े हर्ष के साथ ।
सत दीखते तो सतियाँ जी, हाथ जोड़ती करती बात ।।
सिह देखकर लौट गई वे, डरी कही डालेगा मार ।
सभव है मेरे अग्रजमुनि, बने इसी के ही आहार ।।
गुरु से पूछा-पुन. बताया, सिह नही वह भाई है ।
उसने ऐसी सब विद्याएँ मेरे से ही पाई है ।।
पुन. गईं पाया भाई को, मिलकर बहुत प्रसन्न बनी ।
साधु-साध्वियां जैन संघ के, संयम धन के श्रेष्ठ धनी ।।

दोहा

तुम अयोग्य हो

हुआ वाचना का समय, पहुंचे गुरु के पास ।
गुरु बोले है शिष्य से, छोड़ो तुम अभ्यास ।।
शेष वाचना के लिए, हो तुम आर्य ! अयोग्य ।
स्थूलिभद्र ने सुन लिए, शब्द आज अमनोज्ञ ।।
नही समझ मे आ रहा, है क्या मेरा दोष ।
अपनो करनी पर उन्हें, था पूरा संतोष ।।
गुरुजी ! मेरा दोष है, हां-हां तेरा दोष ।
विद्या पाई या भरा, अहकार का कोष ।।

राधेश्याम

विजय काम पर पाना तेरे लिए सरल का कार्य सुनो ।
विजय कीर्ति पर पाना तेरे लिए कठिन है आर्य ! सुनो ॥

टुकुर टुकुर वे लगे झांकने, गुरु क्या मुख से बोल रहे ।
बिना पोल ही पोल हमारी, गुरुजी कैसे खोल रहे ॥

यश पाने की इच्छा से जो, शक्ति प्रदर्शित की जाती ।
यश पाने की इच्छा से जो, बड़ी पदवियां ली जाती ॥

कीर्त्ति सुनी जाती कानों से, नही आप सम कोई अन्य ।
अहंकार के बीज गुप्त थे, छिपे हुए है बड़े जघन्य ॥

सुनते ही उस सिंह रूप की, घटना आई मन में याद ।
क्षमा मांगने लगे दोष की, गुरु से उचित न वाद-विवाद ॥

ज्ञान प्राप्त करना भी दुष्कर, उसे पचाना अति दुष्कर ।
योग्य नहीं हो इसीलिए तुम, गुरु ने स्पष्ट किया सत्वर ॥

क्षमा याचना पुनः पुनः की, फिर भी माने नही महान ।
किए गए निज निर्णय का भी, होता ही होगा कुछ स्थान ॥

निवेदन और निर्णय

घटना सुनकर संघ उपस्थित, हुआ निवेदन ले अपना ।
स्थूलिभद्र की तुच्छ भूल को, मूल ज्ञान सब दें अपना ॥

नही वाचनाये देने का, कारण अन्य एक है और ।
सघ समस्त सुने इसको फिर, करे ध्यान से किंचित गौर ॥

स्थूलिभद्र को योग्य समझकर, मैने इतना ज्ञान दिया ।
क्योंकि इसी ने दुष्कर-दुष्कर,-कारक मुनि का स्थान लिया ॥

त्याग, धैर्य, गांभीर्य, विनय, मति, लगन आदि गुण अन्य अनेक ।
बहुत प्रसन्न चित्त होता है, इसकी अद्भुतता को देख ॥

दोहा

ज्ञान पढा दश पूर्व का, और उच्च कुलवान ।
इसको भी निज लब्धि का, हुआ बड़ा अभिमान ।।
तो कलियुग के सतजन, गुरुजन के अविनीत ।
स्वल्प स्वत्वधारी कहो, क्या पालेगे रीत ।।
लब्धि ऋद्धि श्रुत सिद्धि का, पाकर के वरदान ।
दु:खी करेगे जगत को, करके श्रुताभिमान ।।
कर्म उपार्जन कर स्वय, होंगे दु:ख के पात्र ।
पाता जाता लुप्तता, लाघवता का गात्र ।।

राधेश्याम

अपयश से बचायें

गुरुवर ने जो भी फरमाया, उसे सत्य मैं मान रहा ।
लोग कहेगे मेरे कारण, नही पूर्व का ज्ञान रहा ।।
इस अपयश से मुझे बचाये, देकर पूर्व ज्ञान अवशिष्ट ।
कोई अगर अनिष्ट करेगे, क्यों न करेगे कोई इष्ट ।।

अर्थ नहीं सिखलाया

भद्रबाहु आचार्य प्रवर तब, तत्पर बने सिखाने ज्ञान ।
मूलवाचना दे दी लेकिन, नही बताया उसका प्रान ।।
अर्थ सहित दश पूर्व दिए थे, चार पूर्व का पाठ दिया ।
आर्यप्रवर श्री स्थूलिभद्र ने, ठाठवाट से पाट लिया ।।
पैंतालीस वर्ष तक पाला, पद आचार्य प्रवर का पूत ।
जिन शासन के सरक्षण में, सत लगाते निज आकूत ।।

दोहा

पूर्त्ति और प्रार्थना

महावीर निर्वाण का, द्विशत पञ्चदशवर्ष ।
स्थूलिभद्र[1] का स्वर्गगमन, अंतिम यह निष्कर्ष ॥
ऐसे योगीराज पर, हमें बड़ा है गर्व ।
न्योछावर कर दीजिए, अपना तन धन सर्व ॥
रायचूर चौमास में, रचा हुआ व्याख्यान ।
क्यों न बनायेगा स्वय विद्वानों में स्थान ॥
पढ़कर इसको शील पर, जो दृढ होंगे लोक ।
वे जन केवल ज्ञान का, पायेगे आलोक ॥
गुण-गुण ग्रहण किया करे, अवगुण अवगुण छोड़ ।
'पुष्कर' मुनि ने आज तक, पाया यही निचोड़ ॥

☆

१ जन्म— वी नि. सवत् ११६
दीक्षा— ,, १४६
आचार्यपद— ,, १७०
स्वर्गगमन— ,, २१५

8

अद्भुत कला-कौशल

दोहा

मगलाचरण

दुष्कर करना जो कठिन, सरल सुकर जो कार्य ।
अति दुष्कर वह कार्य है, जहाँ काम परिहार्य ।।
घोर तपों मे तप यही, ब्रह्मचर्य है एक ।
व्रताचरण से सिद्धियाँ, सधती स्वत: अनेक ।।
कला बहुत कौशल बहुत, भरा पड़ा संसार ।
ब्रह्मव्रती ससार मे, होंगे तो दो चार ।।
त्रिकरण और त्रियोग से, जहाँ पलेगा शील ।
वहां रहेंगे यश भरे, सिधु सरोवर झील ।।
जो नर कीड़ा काम का, वो क्या जाने भेद ।
आता कब ऊष्मा बिना, अग अग प्रस्वेद ।।
निरख नृत्य की कुशलता, निरख अंग का रंग ।
सारथि ने बदला भला, निज जीवन का ढग ।।
दुष्कर रचना के लिए, हुआ स्वय तैयार ।
पाठक जन सप्रेम बस, करे इसे स्वीकार ।।

राधेश्याम

एक प्रतियोगिता

पाटलिपुत्र नगर के बाहर, एक रम्य था क्रीड़ोद्यान ।
जहाँ खेलने और नाचने, तथा दौड़ने का था स्थान ।।

रथ-संचालन का निज कौशल, सारथि दिखलायेंगे आज ।
देखेंगे सब सभ्य साथ में, देखेंगे ही श्री नरराज ।।
वायुवेग से उड़ते घोड़े, रथ को साथ उड़ा जाते ।
अड़ियल अश्व रथी के कर से, क्या न लगाम तुड़ा जाते ।।
स्पन्दनहीन शरीर रथी का, देख सभी अचरज करते ।
कही नही गिर जाये ऐसे, बैठे बैठे नर डरते ।।
रिस्क उठाये बिना बताओ, जीता जाता कभी इनाम ।
डरपोको से हुआ न करता, इस दुनिया का कोई काम ।।
सध्या समय समिति द्वारा बस, विजयी घोषित एक हुआ ।
इच्छित वस्तु नृपति के मुख से, पाने का उल्लेख हुआ ।।
सौम्य ! चाहिये जो भी तुमको, आज दिया जायेगा जी ।
विजय घोषणा का अति उत्तम, लाभ लिया जायेगा जी ।।

कोशा चाहिये

मुझ पर अगर प्रसन्न नरेश्वर, तो कोशा के घर जाऊं ।
अंतरंग की अभिलाषा है, पाऊं तो यह वर पाऊं ।।
जाओ गणिका हुई तुम्हारी, राजाज्ञा का हो पालन ।
कौशलता से कर दिखलाया, तुमने रथ का सचालन ।।
साथ गये अधिकारी सारथि, पहुँचा कोशा के आवास ।
विजय प्राप्ति पर सभी मित्रजन, प्रगट किया करते उल्लास ।।

कठिन अवसर

आज्ञा सौप गये अधिकारी, सारथि रहा वही पर ही ।
कोशा वेश्या के मुख से तो, निकला एक नही स्वर ही ।।
सोचा आफत बड़ी आगई, मुझे चाहिये भोग नही ।
फिर भी नृप से मांग मांगकर, आते रुकते लोग नही ।।

राजमान्य गणिकाओं को, नृप-आज्ञा होती मान्य सदा।
युग की सभी व्यवस्थाओं का, युग में ही प्राधान्य सदा॥

दोहा

वेश्या की सादगी

साधारण से वेष में, आती रथी समक्ष।
इन दोनों के देखिये, अलग अलग है लक्ष॥

हाव-भाव करती नही, संभाषण भी स्वल्प।
नखरे चखरे के लिए, नहीं सजाती तल्प॥

इसके औदासीन्य से, रथी होगया खिन्न।
किये रिझाने के लिए, नव्य उपाय विभिन्न॥

पुरुष नजर आता नही, स्थूलिभद्र सा अन्य।
चुभते सारथि के हृदय, शब्द प्रशसा-जन्य॥

धनुर्विद्या दिखाई

अपना कौशल दिखलाने को, सारथि प्रस्तुत बना तुरत।
नही कला-कौशल का आता, किसी व्यक्ति के द्वारा अन्त॥

धनु. कला करलाघव अपना, संध्या समय दिखाता है।
पके आम्र के गुच्छे मे, वह बाण मार सुख पाता है॥

अटका बाण उसी गुच्छे मे, बाण बाण मे मारा अन्य।
गिरा न गुच्छा बाण भार से, सारथि कला बताता धन्य॥

बाण बाण से लगते-लगते, अंतिम बाण रहा कुछ दूर।
खिंचा बाण को सभी बाणयुत-गुच्छा आकर हुआ हुजूर॥

आम्र गुच्छ वह भेट किया है, कोशा को हर्षित होकर।
भेट जिसे भी दी जाती, दी जाती आकर्षित होकर॥

और कला प्रदर्शन

वेश्या ने समझा यह सारथि, मुझे प्रभावित करता है।
किंतु खिलाड़ी नहले पर निज, दहला लाकर धरता है॥
कौशल देखा बड़ा आपका, अब देखो मेरा कौशल।
ढेर किया सबका भारी, उस पर सुई रखी निश्चल॥
सुई नोंक पर सजा रखे है, कोमल कोमल फूल गुलाब।
उन फूलों पर एक पांव से, स्वयं खड़ी है बिना दबाव॥

दोहा

कोशा नृत्य विशारदा, करती उस पर नाच।
उतरी मानो उर्वशी, अतर चित्त उवाच॥
मानो चपला चमकती, घूम रहा यूँ अंग।
पहचाना जाता नही, परिधानों का रंग॥
गिनी न जाती ताड़ियां, जब चलता हो चक्र।
फेन गिने जाते नही, जब बनती हो तक्र॥
मोडा ऐसे अंग को, मानो डाला तोड़।
बिना लगाये ही लगा, जोड़ जोड पर जोड़॥
नृत्यकला अद्भुत निरख, विस्मित बना विशेष।
सारथि की मति ने दिया, उसे नया आदेश॥
एक घड़ी के नृत्य से, खण्डित हुआ न ढेर।
तीक्ष्ण सुई की नोक से, विंधे न कोमल पैर॥
फूल एक बिखरा नही, पाकर पूरा भार।
नृत्य कला ऐसी यही, नही कही संसार॥

राधेश्याम

कला तुम्हारी बहुत श्रेष्ठ है, कला नही कुछ भी मेरी।
कहाँ आम रत्नागिरि वाले, कहां एक खट्टी केरी॥

यह ही नहीं, वह ही नहीं

वेश्या बोली यह न कला है, कला वही जो जीते काम ।
इसीलिए मैं लेती रहती, स्थूलिभद्र मुनिवर का नाम ॥
इसी चित्रशाला मे रहकर, देखा नहीं उठाकर आँख ।
वह बेचारा विहग विवश है, जिसने पाई नई न पाँख ॥
कार्य हमारा और तुम्हारा, नहीं कला में है शामिल ।
काम विजय ही कला बड़ी है, स्थूलिभद्र इसके काबिल ॥
सारथि समझा स्थूलिभद्र सम, पुरुष नही है अन्य समर्थ ।
उनकी तुलना करने का ही, उद्यम माना जाता व्यर्थ ॥
क्षमा मागकर गया सारथि, जीने को जीवन - पावन ।
वरसाया करता है वरसा, जब भी आता है सावन ॥

दोहा

पूर्ति और स्मृति

पुष्कर मुनिवर ने लिखे, कौशल पर कुछ पद्य ।
लिखना करना बोलना, मुनिजन का निरवद्य ॥
रायचूर चौमास की, यह भी स्मृति है एक ।
शिलालेख कहते यथा, भूपति का अभिषेक ॥
कलाप्रेमियों के लिए, यही प्रेरणा स्रोत ।
जीवन रखना धर्म से, नित प्रति ओत - प्रोत ॥

(परिशिष्ट पर्व, सर्ग १० के आधार से)

9

साध्वी श्री निर्दोष है

राधेश्याम

महाविदेह क्षेत्र में यक्षा-साध्वी गई स-देह सुनो ।
इतिहासों की घटनाओं को, बनकर निःसदेह सुनो ॥
सचिव पुत्र श्री स्थूलिभद्र ने, जब से स्वीकारा संयम ।
उनकी सातों बहनों ने भी, अपनाया संयम का क्रम ॥
समझाया श्रीयक ने लेकिन, अटल रही हैं वे सारी ।
तब छोटे भाई ने भी तो, की संयम की तैयारी ॥
महामात्य पद छोड़ तोड़ कर, जग जजाल स्वयं निकले ।
सच्चे वैरागी मायामय - प्रलोभनों से कब पिघले ॥

क्षुधा का प्रकोप

श्रियक संत से क्षुधावेदना, किंचित् सही नही जाती ।
बड़ी समस्या हो जाती थी, बड़ा पर्व या तिथि आती ॥
मात्र रात्रिभर निराहार बन, जीना भी था कठिन महान ।
उपवासादिक कर लेना तो, उनके लिए नही आसान ॥
बहनें कहती गुरु भी कहते, करो आज तुम भी उपवास ।
मुनि से एक नकार श्रवण कर, बन जाते वे सभी निराश ॥

अंतिम उपवास

यक्षा बोली करो पौरुषी, पर्यूषण है पर्व बड़ा ।
प्रत्याख्यान किया श्रीयक ने, हुआ सभी को गर्व बड़ा ॥

एक पौरुषी हो जाने पर, कहा दूसरी पहर करो।
प्रत्याख्यान करो मुख से यह, निज भगिनी पर महर करो॥
क्षुधा प्रपीड़ित था लेकिन कर लिया श्रियक ने प्रत्याख्यान।
रखना बहुत उचित माना है, स्वसा सतीजी का सम्मान॥
संध्या होने वाली ही थी, साध्वी ने फिर जोर दिया।
करो पूर्ण उपवास, हृदय को, क्यों इतना कमजोर किया॥
जैसे दिन बीता वैसे ही रात्रि क्यों न जायगी बीत।
एक बार ही आया करता, पर्यूषण का पर्व पुनीत॥
श्रियक बने असमर्थ देह से, फिर भी पचख लिया उपवास।
क्षुधा वेदना ने माना है, अपना बहुत बड़ा उपहास॥
जब वे आसन ध्यान लगाते, क्षुधा सताने लग जाती।
जुड़ी हुई हिम्मत आत्मा की, मानो डरकर भग जाती॥
आखिर श्री अरिहन्तदेव से, जोड़ लिया मन मुनिवर ने।
ध्यान-मग्नता में वहते है, आत्म-शांति के शुभ झरने॥
रात्रि समय मे ही मुनिवर की, मृत्यु हो गई है तत्काल।
क्षुधा-वेदना का देखा है, सकल संघ ने आज कमाल॥

यक्षा का पश्चात्ताप

मृत्यु अनुज की हो जाने से, दुःख हुआ है यक्षा को।
धर्म बड़ा बतलाया जिनने, जीव मात्र की रक्षा को॥
मेरे आग्रह से ही मुनि ने, पचखा था उपवास विशिष्ट।
उनके लिए यही लघु तप भी, निकला अहो क्लिष्ट से क्लिष्ट॥
करते जो उपवास नही, तो उनकी मृत्यु नही होती।
झोंका नही पवन का होता, बुझती क्यो दीपक ज्योती॥
इसके लिए संघ के सम्मुख, प्रायश्चित्त मुझे लेना।
श्रमण सघ बोला मुश्किल है, दण्ड जरा सा भी देना॥

शुद्ध भाव से प्रेरित होकर, करवाये तुमने पचखाण ।
पचखाणों से नहीं किसी के, जाते देखे हमने प्राण ॥
आयु कर्म क्षय होने से ही, मृत्यु हुई है सच मानो ।
साध्वीजी निर्दोष आप है, जो कुछ कहा उसे जानो ॥
साध्वी बोली अगर केवली, फरमा दे तुम हो निर्दोष ।
तो मेरी दुःखित आत्मा को, मिल सकता है कुछ संतोष ॥
भरतक्षेत्र मे केवलज्ञानी, कोई नजर नही आता ।
महाविदेह क्षेत्र में किससे, किस विधि से जाया जाता ॥

यक्षा का निर्णय

कायोत्सर्गस्थित पहुँचूंगी, सीमंधर स्वामी के पास ।
मुझको मेरी आत्मशक्ति पर, और भक्ति पर दृढ विश्वास ॥
लिया सघ ने भी सहनिर्णय, कायोत्सर्ग करेगा संघ ।
चार तीर्थ यह संघ अंग है, व्यक्ति व्यक्ति प्रत्येक अभग ॥
शासनदेवी प्रगट हुई है, निर्णय देख सकल संघीय ।
विभागीय सेवाएं देते, अमर समझ कर्तव्य स्वकीय ॥
क्या आज्ञा है देवी बोली—अधिपति ने स्वर स्पष्ट किया ।
महाविदेह इसे जाना है, अतः आपको कष्ट दिया ॥
श्रीसीमंधर स्वामी से ही यह, हो सकती है आश्वस्त ।
हुई नही आश्वस्त अभी तक, परख चुका है सघ समस्त ॥
महाविदेह क्षेत्र की यात्रा, सकुशल हो तब तक श्री संघ ।
कायोत्सर्ग करे तब तो यह, काम दिखा सकता है रग ॥
कायोत्सर्ग करेगे हम सब, देवी चली सती को ले ।
पहुँची समवशरण में तत्क्षण, बैठी तीन प्रदक्षिण दे ॥
पर्युपासना सविधि वन्दना, की सीमधर स्वामी की ।
स्पष्ट हुई वाणी इतने में, प्रभुवर अन्तर्यामी की ॥

भरत क्षेत्र से जो आई है, यह साध्वी निर्दोष महान ।
सुनते ही यक्षा ने पाया, आश्वासन अति ही बलवान ॥

दोहा

देशना सुनी

सुनने को प्रभु देशना, ठहरी है कुछ काल ।
चार चूलिकाएँ मिली, वहाँ उसे तत्काल ॥
शासनदेवी ने उसे, पहुँचाई निज स्थान ।
लगा पूछने सघ सब, मिले तुम्हे भगवान ॥

राधेश्याम

यक्षा लगी सुनाने सबको तत्क्षेत्रीय सकल वृत्तान्त ।
भ्रान्त हृदय भी सभाषण से, बने उसी क्षण से निर्भ्रान्त ॥
संघाधिप से देवी बोली, मेरे योग्य अपर आदेश ।
जा सकती हो स्थान स्वयं के, पूर्ण विज्ञ हो स्वय हमेश ॥
रखी संघ के सम्मुख लाई, हुई चूलिकाए वे चार ।
सघ समस्त उन्हे करता है, विनय भक्ति द्वारा स्वीकार ॥
प्रसन्नता का पार नही था, पाकर ऐसा शुभ अवसर ।
तीर्थंकर की वाणी से ही, शासन आता स्वत. निखर ॥
पूर्ण किया पुष्कर मुनिवर ने यक्षा साध्वी का आख्यान ।
पूर्ण प्रमाणित इसे मानते, माने हुए सभी विद्वान ॥
रायचूर चौमासे मे ही, गतियाँ विधियाँ हुईं अनेक ।
कृतियाँ आकृतियाँ होती हैं, मेरे पद्य - प्रेम को देख ॥
उत्साहित करता है मुझको, श्रावक जन का बड़ा समूह ।
जप तप आत्मशक्ति के द्वारा, कट हट जाते जग प्रत्यूह ॥

10

अपमान का बदला

दोहा

ऐसा न करें

न ही किसी का कीजिये, भूल चूक अपमान।
सभी व्यक्तियो का यहाँ, होता अपना स्थान॥
बदला कृत अपमान का, होता अधिक असह्य।
जैसे दुर्बल बैल से, भार-भार दुर्वह्य॥
अपमिति कर चाणिक्य की, दु:खी बना घननन्द।
करो श्रवण वर्णन सुखद, बाते कर दो बन्द॥

कथा क्षेत्र

चणक नाम का नगर था, सुखकर गोल्ल प्रदेश।
चणी नाम द्विजवर वहाँ, रहता सुखी विशेष॥
तद् पत्नी चणकेश्वरी, जिन अनुयायी जान।
नाम रखा चाणिक्य शुभ, पा पहली सन्तान॥

राधेश्याम

दांत सहित जन्म

निकले हुए दांत हैं सारे, जन्म समय इस बालक के।
जो भी सुनता वो भी कहता-काम बडे हैं मालक के॥

स्थविर श्रमण थे वहाँ उन्हें-ला, दिखलाया है शिशु नवजात ।
विद्वानों से पूछी जाती-जो न समझ मे आती बात ॥
भगवन् ! यह अनहोनी घटना, क्या होगा इसका कारण ।
मुनि बोले यह भाग्यवान है, होगा नृपति न साधारण ॥
अति अद्भुत लक्षण है इसके, होगा बड़ा प्रतापी भूप ।
जिसके लिए किए जाएगे, खडे बडे अति कीर्त्ति-स्तूप ॥

दांत घिस डाले

धर्मात्मा ब्राह्मण ने सोचा, राज्य नरक गति देता है ।
हिसा किए बिना शासन को कब सभाला जाता है ॥
लेकर रेती घिसे दाँत सब, सुत अति रोया चिल्लाया ।
किन्तु कठोर हृदय कर, उसने कार्य पूर्ण कर सुख पाया ॥
स्थविरो ने जब सुना कहा अब, शिशु होगा सम्राट नही ।
होगा पर सम्राट तुल्य ही, लेगा केवल पाट नही ॥
निर्ग्रन्थो की वाणी का कुछ, होता ही है अलग प्रभाव ।
उसे परखने तक अपने को, रखना पड़ता क्या न खटाव ॥

शिक्षा और विवाह

यथासमय विद्वान पिता ने, शिक्षा का कर दिया प्रबन्ध ।
बड़ी निपुणता गुणवत्ता का, होता शिक्षा से सम्बन्ध ॥
मनोयोग से पूर्ण लगन से, करता है अध्ययन गहन ।
विद्यार्थी का सीधा-सादा, उपयोगी है रहन-सहन ॥
मिले पितृ-गत सस्कारों मे, इसे उच्चतम स्वच्छ विचार ।
है सतोष परम धन मन की, शांति प्रेम सुख के आधार ॥
पितृ कुलागत जैनधर्म का, पालन करता जाता है ।
जितनी आवश्यकता होती, उतना अर्थ कमाता है ॥

पाणिग्रहण की हुई व्यवस्था, तरुणावस्था आने पर।
ढहता है जग इसी गृहस्थावस्था के ढह जाने पर ॥
पति-पत्नी में प्रेम परम था, देह भिन्न पर आत्मा एक।
एक दूसरे को न समझने, से ही होते कलह अनेक ॥

पीहर में अपमान

गई एक दिन पीहर पत्नी, होने वाला भ्रातृ-विवाह।
अन्य सभी बहनें भी आई, हुई वहाँ पर थी सोत्साह ॥
वे सब सजधज कर रहती थी, घिरी दासियो से हरदम।
साधारण सी धोती पहने, रहती आती इसे शरम ॥
बहनें और भाभियाँ इसकी, हँसी उडाया करती थी।
संतोषिणी कभी झगड़े में, उठकर नही उतरती थी ॥
खुलकर भाग न लिया वहाँ पर, पतिगृह आई लौट तुरत।
छलनी बने हुए दिल पर, कब हर्ष जमा पाता है पथ ॥
टूटा बांध हृदय का रोने-लगी फूट कर पति के पास।
सभी सुना डाला है उसने, जो भी सहा दुःखद उपहास ॥

निर्णय बदला

जाग उठा चाणिक्य किया है, निर्णय अर्थ जुटाने का।
माप-दण्ड होता है धन ही, इज्जत और जमाने का ॥
विद्वानों को दान दक्षिणा देता है नरपति घननन्द।
वहां पहुँचना उचित मुझे भी, सोच रहा चाणिक्य अमंद ॥
दक्षिणार्थियो के आने से पहले ही जा जमा वहाँ।
देख बड़ा सा ऊँचा आसन, बैठा चिन्ता इसे कहाँ ॥
उसी सिंहासन पर स्थित होकर दान दिया करता था नन्द।
आज नन्द के आसन को तो, रोक लिया द्विज ने सानन्द ॥

एक नहीं पांच रोके

नद नृपति आये है आए नन्द-पुत्र भी साथ वहाँ।
बोले द्विज तुम यहाँ न वैठो, वैठेगे नृप आप कहाँ॥
दासी बोली द्विज ! उठ जावो, बैठो अन्यासन पर आप।
नृप के आसन पर जमने से, तुम्हे नहीं हो जाये पाप॥
रखा कमडल अन्यासन पर, रखा तीसरे पर निज दण्ड।
चौथे पर जयमाला रख कर, रोका आसन दिखा घमण्ड॥
रखा पाँचवे सिंहासन पर, त्वरता से अपना उपवीत।
अधिकृति कर लेने की द्विज ने, देखो नई निकाली रीत॥

धक्कमधक्का

दासी क्रोधित हुई एकदम, वोली व्राह्मण कितना धीठ।
गलहत्था दे इसे निकालो, देखो मुख न निहारो पीठ॥
खड़े खड़े मगधेश्वर भी तो, क्षुब्ध हो रहे थे भारी।
पाकर भ्रू निक्षेप नृपति का, उठी जोर से वेचारी॥
दासी ने दे धक्का मुक्का-द्विज को गिरा दिया नीचे।
कौन सोचता है पहले क्या-फल होगा इसका पीछे॥
देख बड़ा अपमान द्विजोत्तम, हुआ क्रोध से पीला लाल।
नथुने लगे फड़कने बोला, खडा वही पर स्वर संभाल॥

द्विज प्रतिज्ञा

सेना निधि सुत अंत.पुर से, सुखी समृद्ध नरेश्वर को।
मूल सहित उखाडूंगा मैं आंधी जैसे तरुवर को॥
ऐसे कहकर निकल पड़ा है, क्रोधित द्विज बड़-बड़ करता।
तप्त तेल मे पड़ा हुआ जल, जैसे ही चिड़ चिड़ करता॥
ज्योतिष शकुन रसायन विद्या का, था यह पारगत विद्वान।
अपने प्रण की पूर्ति हेतु अब, लगा ढूढने पुरुष महान॥

गया घूमता हुआ खोजता, गाँव "मोरपोषक" में आप ।
नृपति यहाँ का नन्दवश का, था अनुवंशी बड़ा प्रताप ॥
नृप की विवाहिता पुत्री को, चन्द्रपान का दोहद था ।
उसकी पूर्ति नही होने पर, भूपति चिंतित वेहद था ॥
परिव्राजक के पहनावे मे, पहुँच गया चाणिक्य वहाँ ।
मालिन क्या जाने वेचारी, मिलता है माणिक्य कहाँ ॥

एक मांग

नृप की चिन्ता सुनी सकल तब, इसने ऐसा पहचाना ।
होगी यह संतान उच्चतम, लक्षण उत्तम है नाना ॥
ग्राम प्रमुख से कहा आपकी, चिन्ता दूर हटा दूंगा ।
इसकेलिए आप से पहले, वचन एक मैं मांगूगा ॥
दोहद पूर्ति कराने की विधि, बतला दूंगा अभी-अभी ।
विधिवेत्ता कब होते हैं जी, दुनिया के विद्वान सभी ॥
कन्या का जो सुत होगा वह करना होगा मुझे प्रदान ।
इच्छा हो तो हाँ फरमाओ, सोचो समझो स्वय सुजान ॥
मरता क्या करता न, वचन दे दोहद पूरा करवाया ।
समय पूर्ति पर सुत जनमा है, हर्ष सभी के मन छाया ॥

मेरी धरोहर है

पालन-पोषण करने का दायित्व दिया नाना के हाथ ।
मेरी इसे धरोहर मानो, द्विज ने रखी आपकी बात ॥
चन्द्रगुप्त अभिधान रखा है, स्वय पर्यटन हित निकला ।
स्वर्ण और सेना के सग्रह-बिना न कोई राज्य मिला ॥
जड़ी बूटियो और रसायन, की भी करता रहता खोज ।
रिद्धि सिद्ध अभिवृद्धि किसी के, हाथ नही लगती है रोज ॥

खेल हो रहा है

बहुत दिनों के बाद घूमता, हुआ वही द्विज आया फिर।
इसी गाँव में आते आते, बीता समय इसे अतिचिर ॥
एकत्रित हो करके बालक, खेल रहे थे खेल अनेक।
उनमें तेजस्वी बालक को, लिया दूर से द्विज ने देख ॥
ऊँचे आसन पर स्थित होकर, वह कहता था सुनो सुनो।
मै राजा हूँ तुम रैय्यत हो, माँगो इच्छित वस्तु चुनो ॥
तुम्हे दिया यह, तुम्हें दिया यह, छीन लिया है यह तुम से।
तुम मडित हो, तुम दडित हो, तुम पडित हो कुल क्रम से ॥
तुम आना, तुम मत आना, तुम करना तुम कुछ मत करना।
विविध तरह की आज्ञाओं का, बहता मुख से निर्झरना ॥
दूर खड़ा चाणिक्य देखकर, आया है अब शिशु के पास।
बोला मैं भी द्विज हू मुझको, दान दक्षिणा दो विश्वास ॥

ये गौएँ लेलो

चन्द्रगुप्त ने दृष्टि घुमाई, गौवों को जाते देखा।
द्विजवर ! वे तुम लेलो, जाओ, यही दान का है लेखा ॥
आयेगा गौवों का मालिक, मुझे नही डालेगा मार।
चन्द्रगुप्त बोला इसका हम-नृपति करेगे स्वय विचार ॥
धरा वीरभोग्या होती है, संस्कृति हमे सुनाती स्वर।
पराक्रमी जो नर होता है, उसे किसी का कैसा डर ॥
जो भी आयेगा उसको मै, समझूंगा समझाऊँगा।
ऐसा नही करूँगा तो फिर, कैसे राज्य चलाऊँगा ॥

उठो, चलो

द्विज ने पता लगाया यह शिशु, ग्राम प्रमुख का है दौहित्र।
परिव्राजक की पुण्य धरोहर, जीवन चित्र समस्त विचित्र ॥

परिव्राजक वह मै ही हूं बस, पकड़ा द्विज ने शिशु का हाथ।
राजा तुम्हे बनाऊँगा मै, उठो चलो अब मेरे साथ॥
चन्द्रगुप्त चाणिक्य मिलन ही, माना भारत का निर्माण।
एक समर्थ देह है उसमें, एक सशक्त उसी का प्राण॥
नन्द राज्य का पतन और था, मौर्य राज्य का उदय यही।
पतन और उत्थानकाल का, अलग निकलता समय नही॥

दोहा

पूर्त्ति पद्य

लिख पुष्कर की लेखिनी, पद्यावली नवीन।
जिससे आये सामने, घटनाएँ प्राचीन॥
रायचूर चौमास की, ताजा होगी याद।
केसरियामोदक यथा, देते ताजा स्वाद॥

11

सीखने का बिन्दु

दोहा

ज्ञानी से ज्ञानी

बातचीत मे ही प्रगट होते दर्शन - नीति ।
भारतीय संस्कार मे, छुपी हुई है रीति ।।
लेना होता है जिसे, वह ले लेता ज्ञान ।
ले ले करके सिधु जल, वारिद बने महान ।।
जो कुछ जाना आपने, क्या उतना ही ज्ञान ।
फिर करना किस बात का, झूठ-मूठ अभिमान ।।
ज्ञान बहुत ज्ञानी बहुत, भरा पड़ा संसार ।
किया गया हो आपका, उसमे नही शुमार ।।

राधेश्याम

जगल मे मंगल

अश्वारोही युगल जा रहा, गहन वनों को करता पार ।
उन्हे पकड़ने को आये थे, पीछे सैनिक घुड़ असवार ।।
कहा शिष्य ने तीव्र करो गति, पीछे आती है आवाज ।
वत्स ! नही घबड़ाओ प्रभुवर ! स्वय रखेगे अपनी लाज ।।
हम जो पकडे गये यहाँ पर, तो क्या होगा हे भगवान ।
राज्य प्राप्ति का स्वप्न हमारा, लेगा आज हमारे प्राण ।।

पानीदार अश्व अब भगते, चिपक गये उनसे असवार ।
उन्हे देखकर वायुदेव ने, स्वीकारी है सुख से हार ॥
दोनों कुछ सुस्ताये सुनते, आती अब आवाज नहीं ।
गंध बता देती थैले मे, रखा एक भी प्याज नही ॥
एक पेड के नीचे उतरे, खोल घुमाये घोड़ों को ।
घोड़ो की रक्षा करने की, शिक्षा रहती थोड़ों को ॥
बोला शिष्य सभी सेना का, ध्वस हो गया पलभर में ।
कब तक हमें घुमायेगी यों, अपनी किस्मत चक्कर में ॥

संकल्प की दृढ़ता

गुरु बोले संकल्प रखो दृढ़, होना कभी निराश नही ।
वही परास्त हुआ करता है, जिसका दृढ विश्वास नही ॥
पथ नही दिखलाई देता, है विश्वास सुदृढ़ मन का ।
स्वत: बना करती है राहें, उदाहरण है इस वन का ॥
श्रेष्ठ मगध सिंहासन पर मैं, तुम्हे कराऊँगा आसीन ।
की है ऐसी सुदृढ़ प्रतिज्ञा, इसमें ब्रह्म-तेज प्राचीन ॥
नन्दराज्य का मूलोच्छेदन, करके ही मै लू गा सांस ।
नहो बसरी अगर सुहाती, जला डालिये जग के वांस ॥
करते रहो प्रयत्न सफलता, मिल जायेगी हमें अवश्य ।
छींक नही क्यों आती है, जब लेते है हम कोई नश्य ॥

दोनों ये थे

ऐसी बाते करने वाले, चन्द्रगुप्त थे थे चाणिक्य ।
चमक दिखाये बिना न रहते, जो असली होते माणिक्य ॥
नन्दराज पर हमला करके, दोनों ने खाई थी हार ।
सैनिक पीछा करते इनका, मिलने पर देते वे मार ॥

पकड़े गये नही तब सेना, वापिस लौट गई निज स्थान ।
मानव कुछ सोचा करता है, कुछ सोचा करता भगवान ।।
चन्द्रगुप्त बोला अब गुरुवर ! प्यासा क्षुधा सताती है ।
प्राण निकलने की तैयारी, है यों हमे बताती है ।।
वत्स ! अभी चलते है कोई, हो जायेगा भव्य प्रबन्ध ।
वटोहियों की सेवा का बस, गाँवों से होता सम्बन्ध ।।
हरी घास चरकर अब घोड़े, असवारों को ले दोड़े ।
उलाहना जो कभी न खाते, वे क्यों खायेगे कौड़े ।।
संध्या होनेवाली ही थी, दिया दिखाई छोटा गाँव ।
प्राणवान होगए त्वरित ही, बटोहियों के दोनों पाँव ।।

गाँव में प्रवेश

दीपक जलता देखा अन्दर बैठी है वुढिया माई ।
बनी घास की भव्य झौंपड़ी, पहले रास्ते मे आई ।।
उच्च स्वर से पूछ लिया है, अन्दर कोई है क्या जी !
वृद्धा बोली आप कौन है ? हम राही है, ओ माजी ।।
बोलो क्या है बात ? रातभर, करना है विश्राम हमें ।
इसके सिवा आप से कोई, क्या हो सकता काम हमें ।।
माँ का संबोधन सुन माँजी—बोली बेटे ! लो विश्राम ।
वटोहियों की सेवा करलो, अथवा लेलो प्रभु का नाम ।।

प्रभावक व्यक्तिव

उन्नत मस्तक, दीर्घ भुजाएँ, भव्य ललाट हृदय वलवान ।
क्षात्रतेज के साथ रूप ने, वना रखा था अपना स्थान ।।
चौड़ी छाती स्कध सुदृढ थे, नेत्र विशाल सुरग विशेष ।
रग गेहुआं होता ही है, आकर्षण का केन्द्र हमेश ।।

वुढिया ने तरुवर के नीचे, तत्क्षण खाटें दी है डाल ।
बाँधो घोडे हाथ-मुँह धो, आओ भोजन करो विशाल ॥

आतिथ्य की भावना

जान नही पहचान नही हो, करते जन सत्कार बड़ा ।
भारतीय जनता में देखा, केवल यह संस्कार बड़ा ॥
धनवानों का स्वागत हो तो, इसमें क्या है बात बड़ी ।
हरदम से होती आई है, पौष मास की रात बड़ी ॥
रोटी और दाल से बढकर, भोजन क्या हो सकता है ।
आया हुआ अतिथि अपने घर, क्या भूखा सो सकता है ॥
आश्रय दो, दो भोजन पानी, अपनापन दो दो सत्कार ।
आते अतिथि न अर्थ मांगने, नही व्यर्थ का ढोवो भार ॥

भोजन के बाद

भोजन इन्हे खिलाकर बुढिया, गई झौपड़ी में तत्काल ।
ये सोये अपनी खाटों पर, करते कल के लिए खयाल ॥
घास फूस गोमय का ही तो, बना हुआ घर बुढिया का ।
इतने ही में दिया सुनाई, खीज भरा स्वर बुढिया का ॥
चन्द्रगुप्त, चाणिक्य तुल्य ही, तू भी है रे मूर्ख बड़ा ।
दोनों सुनने लगे ध्यान से, नाम आपका कान पड़ा ॥
उठे, गये, बुढिया से पूछा, कैसे है वे दोनों मूर्ख ।
मूर्खो की बाते सुनने को, बने हुए हैं हम भी मूर्ख ॥

कारण पर स्वर

वृद्धा बोली देखो यह सुत, मूर्ख नही तो है क्या और ।
घटना और परिस्थिति पर अब, बटोहियो तुम करना गौर ॥
खीर परोसी गरम, बीच में, उसने डाला अपना हाथ ।
हाथ अगर जल गया बताओ, अब रोने की क्या है बात ॥

इसे किनारे से खानी थी, सीधी सादी बात पड़ी ।
विद्वानों से बढकर होती, इन मूर्खों की जात बड़ी ॥

एक प्रश्न

दोहे

चन्द्रगुप्त चाणिक्य से, तुलना करती आप ।
की उनने क्या मूर्खता, हमें बता दो साफ ॥
चढकर पाटलिपुत्र पर, खाई उसने हार ।
किया मूर्खता से भरा, कार्यक्रम तैयार ॥
सीमा पर कर आक्रमण, करते कुछ अधिकार ।
हमला कर फिर केन्द्र पर, कहलाते हुशियार ॥
खीर किनारे से न खा, दिया बीच मे हाथ ।
बालक रोता देख लो, यही नीति की बात ॥

सीखने का बिन्दु

दोनों लगे सोचने बुढिया, हम से भी नीतिज्ञ बड़ी ।
साधारण सी इस घटना की, मन पर कैसी छाप पड़ी ॥
बोले मां तेरी शिक्षा को, हम भी याद करेंगे नित्य ।
नया सीखने का अवसर ही, देता नित्य हमे आदित्य ॥
वृद्धा शकित स्वर से, बोली क्या तुम वे ही हो भाई ।
हाँ हम ही है मूर्ख, आपसे, शिक्षा आज नई पाई ॥
विन्दु सीखने का होता है, सिन्धु उसी से बन जाता ।
लेना नही जिसे कुछ भी हो, उसको नही दिया जाता ॥

सीखो

दोहा

पुष्कर मुनि इतिहास है, खुला हुआ बाजार ।
ले लो जो कुछ चाहिए, इच्छा के अनुसार ॥

लेने वालों के बिना, दिया न जाता दान।
सुनने वालों के बिना, कब होता व्याख्यान॥
ग्राहक बन करके सुनो, तो पावोगे सार।
चातुर्मास के बाद मे करना हमें विहार॥
रायचूर चौमास में, धर्म-प्रचार विशेष।
हितकारी होते सदा, लिखे गये उपदेश॥

□

12

अवन्ति सुकुमाल का त्याग

दोहा

मंगलाचरण

त्याग मार्ग पाना कठिन, कठिन निभाना ओर।
आत्मसाधना के अतः, होते नियम कठोर॥

बड़े-बडे त्यागी हुए, किया उन्होंने त्याग।
सारे जग से अलग है, उनका एक विभाग॥

द्रव्य त्याग से है बड़ा, देह-राग का त्याग।
होता ही है जीव का देहाश्रित अनुराग॥

यह मैं, मैं यह इस तरह, लेता है मन-मान।
यही बड़ा मिथ्यात्व है, यही बड़ा अज्ञान॥

देह भिन्न, मैं भिन्न हूँ, जब लेता मन - मान।
सम्यग्दर्शन है यही, है यह सम्यक्ज्ञान॥

देखो उत्कट त्याग का, उदाहरण सुकुमाल।
आर्य सुहस्ती के हुए, शिष्य अवन्ति विशाल॥

राधेश्याम

उज्जयिनि में आगमन

तपोमूर्ति आचार्य महागिरी, सूरि सुहस्ती पटधारी।
दशपूर्वी आये उज्जयिनी, छाई खुशियाँ अतिभारी॥

पुर बाहर उपवन मे रुककर, भेजा शिष्यों को पुर में।
पुर में स्थान चाहिए ऐसी, इच्छाएँ उपजी उर में॥

गवेषणा करते-करते वे, पहुँच गये भद्रा के पास ।
बहुत बड़ी सेठानी थी वह, और श्राविका भी थी खास ।।
वन्दन किया भाव से पूछा, कहो प्रयोजन आने का ।
अधिकारी हर व्यक्ति यहाँ है, अपने - अपने दाने का ।।
करो कृतार्थ बताकर सेवा, मुनिजन सेवा सुलभ नही ।
लौ मे अगर न हो आकर्षण दौड़े आते शलभ नही ।।
सूरि सुहस्ती यहाँ पधारे, स्थान चाहिए रहने को ।
आप इसी से समझ सकोगी, शेष नही कुछ कहने को ।।

सेठानी का स्थान

श्री आचार्य देव मम आंगन, चरणस्पर्श से करे पवित्र ।
जो होता न पवित्र अगर हम इस पर प्रतिदिन छिड़के इत्र ।।
कर दी खाली वाहन-शाला, आये अगले दिन गुरुवर ।
शिष्यों का समुदाय बड़ा, थे उपधि और उपकरण प्रचुर ।।

नलिनी गुल्म का पाठ

सूरि श्रेष्ठ स्वाध्याय समय में, नलिनी-गुल्म चितार रहे ।
मानो सस्वर पाठ बोलकर, सम्मुख उसे उतार रहे ।।
सप्तम मंजिल पर सोया था, सेठानी का सुत सुकुमाल ।
थी बत्तीस पत्नियाँ उसके, भौतिक साधन बड़े विशाल ।।
श्री आचार्य देव के स्वर जब, जाकर छूते कानों को ।
नहीं नीद ने सहा आज तक, पड़े हुए व्यवधानों को ।।
भरने लगा छलांगे मन अब, उड़ता नही पलंग पड़ा ।
मन की आत्मा की जागृति ही, दिखला देती रंग बड़ा ।।
पाठ लगा अतिप्रिय कानों को, आया उत्तर महल से आप ।
श्री सूरीश्वर के चरणों मे दत्तचित्त बैठा चुपचाप ।।

तद्गत वर्णित सुख - सामग्री को मैने ही भोगा है।
शास्त्र, सुगुरु, शिशु, सधवा, निर्जरवाणी पूर्ण अमोघा है ।।

जाति स्मरण का प्रभाव

अन्तर्मुखी बना चेतनधन, जातिस्मरण पाया तत्काल।
वन्दन कर गुरुवर से बोला, मैं हूँ भद्रासुत सुकुमाल ।।

दोहा

नलिनीगुल्म विमान में, मैं था देव महान।
मुझे हुआ है इस समय, जाति स्मरण विज्ञान ।।
ऐसी इच्छा हो रही, पुनः मिले वह स्थान।
कृपया मुझको कीजिए, अब श्रमणत्व-प्रदान ।।
सूरीश्वर बोले सुनो, तुम हो अति सुकुमाल।
कष्ट साध्य श्रमणत्व को, नही सकोगे पाल ।।
तन से मन से भी कभी, जिसने सहा न कष्ट।
कष्ट सहन उससे नही, हो सकता है स्पष्ट ।।
भद्रासुत कहने लगा, मुझमे है वह शक्ति।
पालूँगा आचार सब, करता श्री गुरुभक्ति ।।
कोमल हूँ मै देह से, मन से बड़ा कठोर।
इसीलिए मैं दे रहा, निज इच्छा पर जोर ।।
भद्रानन्दन जो तुम्हें, आज्ञा दे परिवार।
दीक्षा देने के लिए, तो हम है तैयार ।।

बिना आज्ञा लोच

बहुत प्रयास किया पर अनुमति-देता कोई नही इसे।
दीक्षा की आज्ञा पाने मे, हुई कठिनता नही किसे ।।
माँ रोती, महिलाएँ रोती, रोते सब परिवारी जन।
फिर भी दीक्षा लेने के वस, हटा नही है इसका मन ।।

स्वतः केश लुञ्चन कर अपना, निर्ग्रन्थों का वेष लिया ।
इस पर भी घर वालों ने अति, हंगामा या क्लेश किया ॥
हुआ उपस्थित गुरुचरणों में, दीक्षित करो दया करके ।
घरवालों की अनुमति को अब, आया और गया करके ॥
गुरु ने समझा इसको अपने, तन पर मोह न शेष रहा ।
अतः शीघ्र दीक्षा लेने का, आग्रह भी सुविशेष रहा ॥

दोहा

दीक्षा दी आचार्य ने, समझ काल बलवान ।
दीक्षित जो होगा उसे, प्रिय लगता कल्यान ॥
प्रभुवर अनशन आमरण, करूं अभी स्वीकार ।
जिससे हो जाए तुरत, मेरा बेड़ा पार ॥
मार्ग कंटकाकीर्ण पर, चलना नंगे पाँव ।
उसे न कुछ भी चाहिये, तेज धूप या छांह ॥
पहुँच गये शमसान में, बने आत्म-ध्यानस्थ ।
आत्मनिरत परिणाम की, चिन्तनधारा स्वस्थ ॥
कायोत्सर्ग किया तुरत, आतमभाव में लीन ।
आत्म-साधना की यहाँ, पद्धति अति प्राचीन ॥

सहिष्णुता का शिखर

उष्ण-परीषह सहन किया है, समताभाव सहित मुनि ने ।
उदासीनता कब दिखलाई, बतलाओ सुविहित मुनि ने ॥
सूर्य छिपाने लगा स्वयं को, देख अडिगता मुनि मन की ।
दावानल भी तपा न पाया, कोमल काया मक्खन की ॥
रात्रि हुई अंधेरा छाया, हिंसक पशुगण रहा दहाड़ ।
हुई दहाड़े बड़ी भयानक, मानो फटने लगे पहाड़ ॥

सारा जगल लगा कांपने, रहे अकंपित मुनि सुकुमाल ।
आत्म समाधि-भावना का यह, निर्हेतुक फल बहुत-विशाल ।।
मुनि पद चिह्नो के रजकण भी, बने रक्त मिश्रित सारे ।
उन्हे सूंघती श्रृगालिनी भी, आई जहाँ श्रमण प्यारे ।।
मुनि के पास पहुँच कर उसने, चाटा मुनि के चरणों को ।
जब प्रतिरोध न होता तब बल, मिलता असदाचरणों को ।।
पिडलियों में दांत गड़ाये, खाने लगी सुकोमल मांस ।
मुनि ने उग्रवेदना में भी, दीर्घ बनाया एक न सांस ।।
बच्चों का भी बढ़ा होसला, मां के साथ लगे खाने ।
उन्हे हटाने की इच्छा भी, श्रमण नही देते आने ।।
ज्यों ज्यों खाते रहे काटते, मुनि के पाँव श्रृगाल सभी ।
मुनि की मनोभावना ऊँची, क्यों जाए पाताल कभी ।।
कटते ही पाँवों के मुनिवर, गिरे स्वयं ही धरणी पर ।
मुनिवर और श्रृगाल हृष्ट थे, अपनी अपनी करणी पर ।।
शुभ परिणामो की धारा में, मर कर मुनिवर बने अमर ।
नलिनीगुल्म विमान प्राप्त कर, सफल किया जीवन का स्वर ।।

परिवार को वैराग्य

माता और पत्नियाँ मिलकर, दर्शन करने को आई ।
देखा नही अवन्ति श्रमण को, दृष्टि घुमाई सुखदाई ।।
भद्रा ने गुरुवर से पूछा, गुरु ने घटना कह डाली ।
बड़ा भाग्यशाली मुनि था वह, इच्छित सुरपदवी पाली ।।
सुनकर परिकर सहित गई मां, वन मे देखा श्रमण शरीर ।
मृत के पीछे स्नेही सज्जन, हो जाते हैं स्वत. अधीर ।।
शोक वियोग प्रपूरित क्षण ने, सब को उपजाया वैराग ।
मां इकतीस पत्नियाँ करती, मायावी दुनिया का त्याग ।।

एक सगर्भा शेष रही है, उसके सुत ने काम किया।
वहाँ एक स्मृति स्थापित कर पितृ-श्रमण का नाम दिया॥
आगे चलकर वही हो गया—"महाकाल प्रासाद" प्रसिद्ध।
सत्य वही होता है भाई, जो लिख देते ज्ञानी वृद्ध॥

पूर्त्ति और सार

सहिष्णुता मुनिराज की, शसनीय वेजोड़।
बधन माया मोह का, तुरत दिखाया तोड़॥
निर्ममत्व निज देव का, अनुपम और अजोड़।
यही जैन साहित्य मे, घटना है सरमोड़॥
ज्योतिपुंज होते नहीं, सारे सन्त समान।
उच्च साधना के लिए, सदा सुरक्षित स्थान॥
'पुष्कर' लिखकर श्रवणकर, पढ़कर करलो ज्ञान।
ज्ञान बिना होता नही, आत्मा का कल्यान॥
रायचूर चौमास की, स्मृतियां है ये पद्य।
पद्य स्मरण हित सरल है, कठिन कठिनतम गद्य॥

नोट—यह घटना वी० नि० स० २४५-५० के मध्य की है। सम्राट सप्रति, जिनका राज्यकाल ई० पू० २३६-२२७ है। आचार्य सुहस्ती के सम-कालीन और भक्त थे।

13

रसासक्ति का परिणाम

दोहा

प्राक्कथ्य

स्वादविजयव्रत अति कठिन, सरल सकल व्रत अन्य ।
जिसने भी पाला इसे, व्यक्ति बना वह धन्य ॥
रूखे सूखे का नही, उठता यहाँ सवाल ।
स्वाद-विवर्जित वस्तु का, उत्तर दो सँभाल ॥
सीमित द्रव्यो में अगर, ढूंढा जाये स्वाद ।
सीमितता का लाभ क्या, सच है बिना-विवाद ॥
प्रश्न न सत गृहस्थ का, करते सब आहार ।
स्वाद-विजय व्रत पर हमें, करना स्वच्छ विचार ॥
रसासक्ति देती यहाँ, हर प्राणी को कष्ट ।
मीन, मांस का लोलुपी, प्राण गँवाता स्पष्ट ॥
साधु रसास्वादी नही, करता उग्र विहार ।
उसको अपने कल्प पर, रहता नही विचार ॥
अगली गति भी बिगड़ती, रसास्वाद के साथ ।
सूरि आर्य मगू हुए, सुनो उन्ही की बात ॥

राधेश्याम

जीवन प्रसंग

स्वर्णभूमि में धर्म-धुरंधर, सूरि आर्य सागर वर देख ।
उनके उत्तम शिष्यों में से, शिष्य आर्य मंगू थे एक ॥

ऊँचे ज्ञानी धर्म प्रचारक, बहुश्रुती विद्वान बड़े।
स्थान स्थान पर होते रहते, सार्वजनिक व्याख्यान बड़े॥
मथुरा में जब हुआ पदार्पण, स्वागत हुआ बड़ा भारी।
उपदेशों से बनी प्रभावित, तत्रस्थित जनता सारी॥

सेवा का लाभ

मृदुभाषा मनहर शैली का, मन पर पड़ता महा प्रभाव।
प्रवचन सुनने को आना यों, डाला जाता नही दबाव॥
श्रद्धा भक्ति बढी जनता की, मिलती माधुकरी उत्तम।
दूध दही घृत मिष्टान्नों का, मानो बंधा नित्य का क्रम॥
सेवा करते भक्त सुगुरु की, सुनते सत्यसना उपदेश।
नये श्रावकों की संख्या में वृद्धि होती गई हमेश॥
श्रमणसंघ जब भी करता था, जाने का अन्यत्र विचार।
तब भी नगर-निवासी कहते—आग्रह विनय करो स्वीकार॥
जाओ नही यही पर ठहरो, काम एक ही करना है।
देना है संदेश धर्म का, चाहे जहाँ विचरना है॥
यहाँ सुनेंगे हम सब सज्जन, अन्य सुनेंगे लोग वहाँ।
लिए आपके हम वे दोनों, असदृशता के योग कहाँ॥
कई बार रोका यो कहकर, थे कुछ गुरुजी भी रुके हुए।
उत्तम माधुकरी मिलती थी, रसासक्ति पर झुके हुए॥

श्रमणसंघ का निर्णय

श्रमण संघ ने सोचा गुरुजी, जायेंगे अन्यत्र नहीं।
हम निज साध्वाचार देखते, रुक भी पाते अत्र नही॥
चलो छोड़ कर गुरुचरणों को, पालेंगे अपना चारित्र।
क्रिया-कल्प-आचार साधु का, अविहित हो तो है अपवित्र॥

गुरु से लगे प्रार्थना करने, गुरुजी आप विहार करे।
स्वीकृत चारित्रात्मा का हम, अपने आप विचार करे॥
सुनने और सोचने का भी, गुरुजी करते कष्ट नही।
"कि बहुना विज्ञेषु" भावना, रह पाती अस्पष्ट नही॥
छोड़ आर्य मगू को सारे, श्रमण विहार गये है कर।
डर हो जिसे एक प्रभुवर का, उसको नही किसी का डर॥

शिथिलता का प्रभाव

तप-सयम-स्वाध्याय-साधना-ध्यानासन सब शिथिल बने।
पूर्ण प्रणीताहारों पर ही, मानो गुरुवर ग्रथिल बने॥
इड्ढी-गौरव, साया - गौरव, रस - गौरव मे गृद्ध हुए।
नही शिथिलता को त्यागा है, जब तक गुरुवर वृद्ध हुए॥
स्थिर रहने का फल समझो या, समझो रसासक्ति का दोष।
केवल उनके भक्तों को ही, मिलता था इससे संतोष॥
जीवन के अन्तिम क्षण तक भी, आलोचना न कर पाये।
जिसने नही हिलाये कर पद, वह कैसे सर तर पाये॥

यक्ष योनि में जन्म

आयु पूर्णकर यक्षयोनि मे, उपजे है मंगू आचार्य।
अवधिज्ञान के द्वारा अपना, पूर्वाचरित निहारा कार्य॥
खिन्नमना हो सोचा मैने-विराधना की संयम की।
पा नर जन्म, धर्म, मुनि पदवी, खोई शक्ति परिश्रम की॥
कहा उचित ही है शास्त्रों[1] मे, चौदह पूरवधारी संत।
क्या न प्रमादावस्था द्वारा, गति पाते है काय अनन्त॥

---

१ चउद्दस पुव्वधरावि, पमायओ जतिऽनतकायेसु।
एयपि हा हा हा पाव, जीवनतए तया सरिय॥१०॥ —आर्य मगू कथा

शिष्यों को बोध

स्थंडिल जाते समय निहारे, पूर्व जन्म के अपने शिष्य ।
ये न प्रमादी बन जाएँ, इसलिए जगाऊं इन्हें अवश्य ॥
रूप विचित्र बना कर अपने, मुख से जीभ निकाल खडे ।
इचरजकारी रूप देखकर, बोल पड़े है संत बड़े ॥
देवानुप्रिय ! आप कौन है, देव ! यक्ष ! नर ! गुप्तात्मा ।
अभिप्राय जाना जाए तो, जागृत होगी सुप्तात्मा ॥

अपना पूर्व परिचय

बोला यक्ष आर्य मंगू मैं, नही दूसरा कोई अन्य ।
खिन्न हृदय हो पूछा सबने, गति क्यों ऐसी हुई अधन्य ॥
विराधना संयम की की थी, उससे हुई दशा ऐसी ।
बोलो तुमको गति ईप्सित है, मेरे जैसी या कैसी ? ॥
अगर न ऐसी गति ईप्सित है, तो करना मत कभी प्रमाद ।
महावीर प्रभु की वाणी को, गौतम प्रभु भी रखते याद ॥
बोले संत किया यह अच्छा, हमें जगाया अवसर पर ।
हम न प्रमाद करेंगे गुरुवर ! सदा रखेंगे इसका डर ॥

दोहा

शास्त्रगत उल्लेख

भणगं[1], करगं[2], लिखलिखा, झरगं[3] का भी पाठ ।
परम प्रभावक सूरिवर, श्रुत सागर सम्राट ॥
प्राप्त वाचनाचार्य पद, पारगत विद्वान ।
ऐसे मंगू आर्य का, हुआ नही कल्यान ॥
रसासक्ति का देख लो, कैसा दुष्परिणाम ।
आज किसी भी व्यक्ति का, लिखा न जाता नाम ॥

---

१ पाठ करने वाले, २ सूत्रोक्त क्रियाकलाप वाले, ३ धर्म ध्यान करने वाले

मुनि होते उत्तम सदा, होता बुरा प्रमाद।
'पुष्कर' मुनि के कथन को, आप रखोगे याद॥
साधारण से संत का, पता न लगता अत्र।
वाचित प्रचलित उल्लिखित, घटना यह सर्वत्र॥
सयम की आराधना, सुख का कारण सत्य।
औषधि लेने के समय, पूछो पथ्यापथ्य॥
सत्य सदा ही एक है चाहे जो हो काल।
समय बदलने पर नही, बदला करता व्याल॥
याद रहेगा क्यों नही, रायचूर का वास।
पुष्कर पद्यों ने जहाँ, पाया पूर्ण विकास॥

14

महान् प्रभावक आर्य वज्रस्वामी

दोहा

मंगलाचरण

जन्मान्तर-कृत सुकृत से, बनता व्यक्ति समर्थ ।
पुनर्जन्म की मान्यता, रखती अपना अर्थ ।।
पुनर्जन्म जो हो नहीं, तो हों सभी समान ।
देती है असमानता पुनर्जन्म का ज्ञान ।।
अन्तर नभ पाताल सम, मर्त्य - मर्त्य में प्राप्त ।
शंका आत्मा की सकल, होती स्वतः समाप्त ।।
जिसका जैसा कर्म है, मिलता वैसा योग ।
कह देते हैं अज्ञजन, हमने किया प्रयोग ।।
आर्य वज्रस्वामी हुए, बहुत प्रभावक एक ।
जिनके जीवन से हमे, मिलता आत्म-विवेक ।।

राधेश्याम

कथारंभ

देश अवन्ती, नगर तुम्बवन, धनगिरि था संपन्न गृहस्थ ।
भार्या का था नाम सुनन्दा, दम्पति आपस में विश्वस्त ।।
प्रेम शान्ति सुख धर्म व्यवस्था, द्वारा जीवन स्वर्ग समान ।
क्लेश अशांति अधर्म दुःख से, जीवन गिना नरक का स्थान ।।
हुई सुनन्दा गर्भवती तब, धनगिरी बोला बात कहूं ।
विषय विरह स्पृहावर्जित, मैं क्यों माया के साथ रहूं ।।

पुत्र रूप अवलंबन आप, हो जायेगा प्राप्त तुम्हे ।
दीक्षा लेने का शुभ अवसर, करने दो संप्राप्त हमे ॥

सहर्ष अनुमति

बोली बाधा बना न करती, जैन श्राविकाये स्वयमेव ।
ले सकते दीक्षा जब भी, हों तैयार स्वय पतिदेव ! ॥
पाकर सुत का सबल सहारा, जीवन-यापन कर लूंगी ।
याद आपकी आयेगी तब, दीर्घ निसाँसा भर लूंगी ॥
पाकर अनुमति धनगिरि निकले, गये सिंहगिरि गुरु के पास ।
करने लगे कठिन सयम का, पालन तथा आगमाभ्यास ॥

रोता ही रहता

समय गर्भ का पूर्ण हो गया, जन्म लिया शिशु ने सुख से ।
गर्भकाल की दुखावस्थाएँ, चे चे मिष कहता मुख से ॥
जन्म महोत्सव गया मनाया, मिले पारिवारिक सारे ।
हर्ष शोक मे जो घर आए, वे ही नर होते प्यारे ॥
सहेलियों ने अन्य स्त्रियों ने, गाए मंगल गीत मधुर ।
मधुर स्वरो के द्वारा मन को, मिलता है आनन्द प्रचुर ॥
बोली सखी आज धनगिरि यदि, दीक्षित हुए नही होते ।
तो सुत जन्मोत्सव के देखो, रंग विशेष कई होते ॥

दोहा

जातिस्मरण और रुदन

ये सारी बाते वहाँ, सुनता शिशु नवजात ।
जातिस्मरण उसको हुआ, जानी सारी बात ॥
दीक्षित होता है मुझे, यह तो नि.संदेह ।
बाधक बन जाये नही, मेरी मां का स्नेह ॥

शिशु ने ऐसा सोचकर, रुदन किया प्रारंभ।
शिशु का रोना साहजिक, छिपा न रहता दंभ ॥
दंग स्त्रियों के रुदन में, जलमिष रहता व्याप्त।
शिखर सरलता का स्वतः, शिशुता को संप्राप्त ॥
रहा न रोने के सिवा, शिशु का कोई काम।
अब चुप होने का नही, लेता है यह नाम ॥
स्तन्यपान करता नही, नही चाहता गोद।
होठ हिला हँसता नही, नही मनाता मोद ॥
दिन हो चाहे रात हो, संध्या चाहे प्रात।
रोने की आदत नही, तजता शिशु नवजात ॥
राजी करने को किए, मां ने बहुत प्रयत्न।
प्यारा होता प्राण से, जग को आत्मज रत्न ॥
सुत तूं प्यारा है मुझे, कैसे देता दु.ख।
सुख देना तो दूर है, छीना सारा सुक्ख ॥
बीत गये छह मास यों, बड़े कष्ट के साथ।
नही समझ में आ रही, शिशु रोने की बात ॥

गुरु आदेश और भिक्षा

आर्य सिहगिरि का हुआ, पुनः पदार्पण तत्र।
गुरु सेवा से शांति का, छाया रहता छत्र ॥
मुनि धनगिरि एवं शमित, ले गुरु का आदेश।
भिक्षा लाने के लिए, उद्यत बने विशेष ॥
देख शकुन गुरु ने कहा, जो कुछ भी हो प्राप्त।
द्रव्य सचित्ताचित्त की, करना क्रिया समाप्त ॥
कर लेना सुख से ग्रहण, तुम्हे न होगा दोष।
लाओगे जो तुम वही, देगा सुख संतोष ॥

"जो आज्ञा प्रभु ! चल दिये, संत बड़े गुणवान ।
विनयवान देते सदा, आज्ञा को सम्मान ॥
गये सुनन्दा के वहाँ, सर्व प्रथम वे सन्त ।
सखियाँ आईं दौड़कर, नही हर्ष का अन्त ॥
सखी ! आज इस पुत्र को, धनगिरि को दो सौंप ।
केवल कचरे से भरी, साफ न होती सौफ ॥

राधेश्याम

पहले से ही सोच रखा था, इसे किसी को दे दूँगी ।
जो शिशु सदा सताता उसको, सौप मुक्ति मैं ले लूँगी ॥
एक विचार स्वयं का था ही, सखियाँ सम्मत बनी सभी ।
घर बैठे ही गगाजी का, आना होता कभी - कभी ॥
बोली मुनि के सम्मुख झुककर, इसे लीजिए आप प्रभो ! ।
रोता ही रोता रहता है, कर दो मुझको माफ प्रभो ! ॥

शर्त यह है

धनगिरि बोले ले लेंगे हम, लोटायेंगे नही इसे ।
मर्जी चाहे जैसे रखे, पाल पोसे कही इसे ॥
हृदय स्त्रियों का शीघ्र बदलता, आता नही अतः विश्वास ।
सुत की भिक्षा देती हो या, करती हो हल्का उपहास ॥
साक्षी कोई यहाँ चाहिए, हम दोनों की बातों का ।
बातों का युग आज नही है, युग है कलम दवातों का ॥
बोली शीघ्र सुनन्दा मुनिवर ! आर्य शमित मेरे भाई ।
साक्षी इन्हें बना लेती हूँ, सखियां जो भी है आई ॥
एतद् विषयक झगड़ा टटा, नही उठाऊगी फिर से ।
चढा हुआ किस ही जीवन का, भार उतार रही सिर से ॥

दोहा

आप इसे लेकर करे, मुझे कष्ट से मुक्त ।
इससे बढकर कुछ नही, माधुकरी उपयुक्त ।।

राधेश्याम

ऐसे कहकर डाल दिया है, शिशु को मुनि की झोली में ।
बन्द कर दिया शिशु ने रोना, हँसते खिलते होली में ।।

क्या लाये हो ?

झोली उठा चले है मुनिवर, बढता शिशु का भार गया ।
गुरु के पास पहुँचकर बोले, अपना सोचा पार गया ।।
गुरु आये ले झोली बोले - कहो उठाकर क्या लाये ?
वज्र समान भार लगता है, लाओ जो भी हो पाये ।।
झोली को खोला देखे हैं, तेजस्वी शिशु के लक्षण ।
ज्ञानी संत समझ लेते है चिन्ह शुभाशुभ भी तत्क्षण ।।
प्रवचन का आधार बनेगा, किया जाय शिशु का पालन ।
गुरु की आज्ञा से होता है, सकल कार्य का संचालन ।।
शय्यातरी श्राविकाजी को, बुलवाकर सौंपा यह कार्य ।
आचार्यो के आदेशों को, चार तीर्थ कहते स्वीकार्य ।।

समझदार शिशु

शिशु-पालन का कार्य कठिनतम, बड़ी लगन से वह करती ।
कठिनाई के बिना किसी की, नैया पार नही तरती ।।
बालक निज कायिक चेष्टा से, सावचेत कर देता है ।
उसको परिश्रवण से मल से, कभी नहीं भर देता है ।।
जब भी जगता जब भी सोता, जब भी उठता मुस्काता ।
प्रतिदिन बढता जाता बालक, मालक पालक को भाता ।।

सुनन्दा पहुँची

स्थिति से अवगत हुई सुनन्दा, मातृ-स्नेह मन उमड़ पड़ा।
बिखरा हुआ घनाघन पाकर, पवन वेग फिर घुमड़ पड़ा ॥
सुत को पाने की इच्छा से, गई उपाश्रय में तत्काल।
सुत मेरा है मुझे सौंप दो, बोली अपना हक संभाल ॥
शय्यातरी लगी है कहने, सुत कैसे दे दूँ तुझको।
गुरुजी की है वड़ी धरोहर, उनने ही सौंपी मुझको ॥
जिसने दिया वही लेगा, बस तू है लेने वाली कौन।
देने वाले दे सकते है, मैं हूँ देने वाली कौन ॥

संतों के पास गई

आर्य सिंहगिरिराज पधारे, विहरण करते हुए यहाँ।
सुना तुम्बवन में मुनि आये, गई सुनन्दा आप वहाँ ॥
मेरा सुत लौटा दो मुझको, सुनो प्रार्थना करती हूँ।
आप संत हो मैं नारी हूँ, झगड़ा करते डरती हूँ ॥
गुरु बोले भिक्षा मे जो हम, पाते उसे न लौटाते।
देना वापिस नही कल्पता, साध्वाचारों के नाते ॥
अपना वचन-भंग करती हो, और दुराग्रह दिखलाती।
धर्म कर्म की विदुषी से क्या, ऐसी बात कही जाती ॥
मुनि जी के समझाने से भी, हटी नहीं अपने हठ से।
कैसे हट सकता है बोलो, मठाधीश अपने मठ से ॥

राजा के पास गई

मांग न्याय की प्रस्तुत करदी, राज-सभा में जा करके।
माना करते मूर्ख मानवी, अपने मुख की खा करके ॥
सुनी कथा न्यायी राजा ने, बोला इसका न्याय यही।
मेरी मति में जो आया है, इसका एक उपाय यही ॥

इधर बिठा दो मुनि धनगिरि को, इधर बिठा दो माता को।
सम्मुख शिशु को बिठला दो, बिठला दो अवसर दाता को ॥
इसे बुलाओ यह उठ जाए, पास उसी के रहने दो।
दुनिया जो कुछ कहे उसे, तुम सुनो न सब कुछ कहने दो ॥
मां बोली, ले लाल खिलौने, यह ले सरस मिठाई ले।
आजा मेरे प्यारे वेटे, मां से नही धिठाई ले ॥
टस से मस न बना है बालक, अब मुनि ने अवसर पाया।
चिह्न साधुता का अति उत्तम, रजोहरण ले दिखलाया ॥
पास हमारे रहना हो तो, आओ रजोहरण ले लो।
कर्म रज:कण झाड़ो इससे, संयम जीवन में खेलो ॥
बालक उठ कर आया मुनि की, गोदी में बैठा तत्काल।
रजोहरण ले उसे भँवर की, भाँति डुलाने लगा विशाल ॥
जैनधर्म के जयघोषों से, गूंज उठा सारा प्रासाद।
न्याय सभा मे न्याय हो गया, खत्म हो गया बड़ा विवाद ॥
बालक वज्र संघ को दे दो, राजा ने आज्ञा दी है।
संघ सहित श्रमणों के प्रति, अति भक्ति भावना प्रगटी है ॥

सुनन्दा की दीक्षा

लगी सोचने स्वय सुनन्दा, शून्य हुआ मेरा संसार।
भाई-पति-सुत दीक्षित है, जब मुझे अन्य किसका आधार ॥
मैं भी दीक्षा ले लूं करलू, अपनी आत्मा का कल्यान।
दीक्षा अन्य नही कुछ भी है, जीवन जीना त्याग-प्रधान ॥
दीक्षा धारण करली जाकर, साध्वीजी के पास वही।
दीक्षा उसके लिए न जिसका, हो धार्मिक विश्वास नही ॥

वज्र बालक की दीक्षा

आठ[1] वर्ष का हो जाने पर, शिशु को अपने साथ रखा।
सिंहगिरि गुरुवर ने देखो, उस पर पूरा हाथ रखा॥
दीक्षा शिक्षा गुरु से पाई, भिक्षा पाई लोगों से।
पूर्ण तितिक्षा पाई मुनि ने, निज अनुभूत प्रयोगों से॥
ज्ञान-पिपासा वज्र संत की, पढते त्यों बढती जाती।
जैसे तिथियाँ बढती वैसे, चन्द्रकला चढती जाती॥

एक दिन का प्रसंग

आर्य सिंहगिरि अन्य श्रमण जन, गये हुए सब इधर-उधर।
बाल वज्र मुनि के मन में तब, चंचलता की उठी लहर॥
सभी साधुओ के वस्त्रों को, अपने चारो और रखा।
स्वयं बीच में बैठ गए है, मानो बनकर सूरि सखा॥
वस्त्रो को मुनि मान वाचना, अंगों पूर्वों की देते।
धारा-प्रवाह वाचना चलती, नाम न रुकने का लेते।
आर्य सिंहगिरि आये, आई कानों मे मुनि की आवाज।
देखा छिप कर बाल वज्र मुनि, बैठा क्या करता है आज॥
पढता है या चितारता है, उतारता या शास्त्र नकल।
कृतियां स्मृतियां गतियां विधियां, बतला देती छुपी अकल॥
बाल वज्रमुनि गाथाओं का, करते थे उच्चारण शुद्ध।
स्पष्ट विवेचन कर समझाते, कही नही होते अवरुद्ध॥
सुन सोचा गुरु ने जिनशासन, धन्य गच्छ है गच्छों मे।
बाल संत में जो गुण है वे, है क्या अच्छों अच्छों में॥

---

१ आचार्य प्रभाचन्द्र ने प्रभावकचरित्र मे लिखा है कि वज्रस्वामी को तीन वर्ष की आयु मे ही दीक्षित कर लिया था। —प्रभावक चरित्र पृष्ठ ५

दोहा

गुरु जी चले गये

कहा निस्सिही निस्सिही, शब्द एक दो बार।
शिष्य समझ ले सूरि जी, अब है रहे पधार॥
लज्जा मिश्रित भय लिए, उठे बाल मुनिराज।
सोचा गुरु जी चित्त में, क्या समझेगे आज॥
सम्मुख आ वन्दन किया, पोंछे गुरु के पैर।
पैर पोंछने से न क्या, धुल जाते है वैर॥
गुरु ने देखा स्नेह से, समझ गए मुनि बाल।
निश्चित आई ध्यान में, जो थी मेरी चाल॥
गुरु ने सोचा लघु मुनि, रखता ऊँचा ज्ञान।
मुझको करना चाहिए, अब इसका सम्मान॥
कहा सुबह ही सूरि ने, मै जाता अन्यत्र।
शिक्षार्थी मुनिजन सभी, ठहरेंगे ही अत्र॥

राधेश्याम

कौन वाचना देगा हमको, शिक्षार्थी मुनि बोल उठे।
जो भी शका उठी चित्त मे, गुरु के सम्मुख खोल उठे॥
"बाल वज्र मुनि देगा" सुनकर, चकित हो गये सारे सन्त।
संत सभी सविनय बोले है, जैसी आज्ञा हो भगवन्त॥
गये सूरिवर, रहे सत सब बाल वज्र मुनि से पढते।
लगा सभी को बाल सत है सिहसूरि से भी बढ़ते॥
बहुत स्पष्ट समझाते है ये, सूत्र अर्थ तदुभय आगम।
सिंह बड़ा है तो क्या उसका, शावक कुछ होता है कम ?॥

इनसे ही पढ़ेंगे

गुरु जी लौटे, पूछा, श्रमणो !, चली वाचनाएँ कैसी।
स्थिति सतोषजनक थी जैसी, बतलादी वैसी वैसी॥
इच्छा है अब हमें वाचना, वाल वज्र मुनि जी ही दे।
आप हमारे लिए परिश्रम, इतना अधिक नही ही ले॥
बाल वज्रमुनि की प्रतिभा का, मुझको पहले से अनुभव।
अतः कार्य सौपा था मैंने— किया नही करता मम-तव॥

उज्जयिनी के लिए

स्वल्पकाल में वज्र बाल ने, सीखा गुरु से सारा ज्ञान।
इस पर से उनकी प्रतिभा का, आप लगा लो कुछ अनुमान॥
गुरुजी ने अब इन्हे पढाने, उज्जयिनी में भेजा है।
सिंहगिरि गुरुवर का देखो, कितना बड़ा कलेजा है॥
भद्रगुप्त आचार्य प्रवर थे, दशपूर्वी ऊचे ज्ञानी।
ज्ञानी होना और बात है, विरले ही होते दानी॥
आप बड़े ज्ञानी दानी थे, अभिमानी थे नही जरा।
ऐसे संतो को मिलती है, विद्या परा तथा अपरा॥

दोहा

बाल वज्र मुनि ने किया, आज्ञा सहित विहार।
उज्जयिनी पहुँचे तुरन्त, लेकर नये विचार॥
संध्या होने से रहे, पुर के बाहर रात।
आया है उल्लास ले, आज नवोदित प्रात॥
भद्रगुप्त की ओर वे, करते है प्रस्थान।
इधर किया आचार्य ने, शिष्यों को आह्वान॥

सपना सही है

वत्सो ! देखा रात्रि मे, मैने सपना एक।
सुनना उसको ध्यान से, करना और विवेक॥

एक सिंह शावक सुखद, आया बनकर छात्र।
चाट लिया है जीभ से, क्षैरेयी का पात्र॥

इससे ऐसा हो रहा, मुझ को आज प्रतीत।
आयेगा कोई अभी, शिष्य एक सुविनीत॥

दश पूर्वों के ज्ञान को, वह कर लेगा प्राप्त।
इतना कह करने लगे, अपनी बात समाप्त॥

इतने में आ वन्दना करते है मुनिबाल।
गुरु का अपना दे दिया, परिचय भी तत्काल॥

राधेश्याम

ज्ञान दे दिया

अति शुभ शारीरिक चेष्टायें, लक्षण बहुत विलक्षण देख।
बहुत योग्य समझा है गुरु ने, गुरुजन रखते स्वयं विवेक॥

दश पूर्वों का ज्ञान कराया, भद्रगुप्त ने प्रेम सहित।
प्रेम रहित जो शिक्षण-भिक्षण, वह होता है क्षेम रहित॥

ज्ञान प्राप्ति कर बाल वज्र मुनि, भद्रगुप्त से ले आशीष।
लौटे गुरुवर के चरणों में, शीघ्र झुकाते सविनय शीष॥

आचार्य पदोत्सव

अपना शिष्य हुआ दशपूर्वी, प्रसन्नता की बात बड़ी।
तड़का बड़ा उसी का होता, जिसकी होती रात बड़ी॥

अपना अंतिम समय जानकर, किया वज्र मुनि को आचार्य।
योग्य शिष्य को पद देने का, आचार्यों का होता कार्य॥

उस अवसर पर उत्सव गुह्यक, देवों द्वारा किया गया।
सुयश सघ के अध्यक्षों को, सचिवों को ही दिया गया॥

संत पाँच सौ सदा विचरते, सुनो वज्रस्वामी के साथ।
महा प्रभावक आचार्यो मे, लिखी गई[1] है इनकी ख्यात ॥

आप भी करो

जिनशासन के लिए आप भी, जीवन-दान करो अपना।
अगर कभी देखा हो जो कुछ, वह तो सही करो सपना ॥
सुत दो, कन्याएँ दो, धन दो, और समय दो, सेवा दो।
श्री जिन शासन अपना शासन, समझ प्रेम का मेवा लो ॥
प्राचीनाचार्यो पर पुष्कर, करता है कुछ लेखन-कार्य।
इतिहासों की घटनाएँ क्या, रही आज भी अस्वीकार्य ॥

दोहा

रायचूर चौमास की, यह भी श्रम स्मृति एक।
जीवित रहते जगत में, जैसे प्रस्तर-लेख ॥

●

१ आचार्य वज्रस्वामी की जीवन-गाथा प्रभावक चरित्र, परिशिष्ट पर्व, कथाकोष तथा रत्नकरण्ड श्रावकाचार मे विस्तार पूर्वक मिलती है।

15

कल सुभिक्ष होगा

दोहा

प्रकृति बड़ी है

प्रकृति की लीला बड़ी, मानी गई विचित्र ।
समझ कौन सकता इसे, शत्रु और सन्मित्र ॥
प्रकृति जब भी चाहती, करती श्रेष्ठ सुकाल ।
कोप दृष्टि इसकी हुए, हो जाता दुष्काल ॥
जीवन-रक्षक अन्नकण, मण - मोती वेकार ।
प्रथम प्राण है दूसरा, तन का मन का भार ॥
अगर अन्न हो पास में, तव धन देता काम ।
अन्न बिना धन का नही, लेता कोई नाम ॥
अन्न अगर उपजा न हो, किसे खरीदा जाय ।
जीने का बचता नही, कोई अन्य उपाय ॥

राधेश्याम

भयकर दुष्काल

दक्षिण भारत की यह घटना, सोपारक था नगर बड़ा ।
आसपास के क्षेत्रों में भी, बहुत कड़ा दुष्काल पड़ा ॥
चारो ओर नजर दौड़ाओ, दिखता दाना एक नही ।
दाने बिना न जीवन निभता, निभता धर्म-विवेक नही ॥
धनी उदार श्रेष्ठियों का था, यद्यपि उस पुर में रहवास ।
क्षुधा पीड़ितों के प्रति उनमें, दया भाव ने लिया विकास ॥

उनको भी जब अन्न न मिलता, अन्न दान वे कैसे दें।
जिन्हे चाहिए अन्न स्वर्ण का, दान श्रेष्ठतर कैसे ले ॥

दोहा

दान महिमा

देते सदा दयालुजन, दुर्भिक्षों में दान।
दान बिना इस जगत का, कब होता कल्यान ॥
पात्रापात्र विचार को, यहाँ नही अवकाश।
देता है आदित्य भी, सब को स्वीय प्रकाश ॥
जो प्राणों का पात्र है, वह दानों का पात्र।
जो पढने मे तेज है, वही श्रेष्ठतम छात्र ॥

जिनदत्त का घर

सेठ धनाढ्य एक रहता था, उस पुर में जिनदत्त महान।
पत्नी का था नाम ईश्वरी, दोनों धरते जिनवर ध्यान ॥
पहला सुत नागेन्द्र, दूसरा, था निवृत्ति, तीसरा चन्द्र।
चौथा सुत विद्याधर प्यारा, सारे विनयी सुखी अतन्द्र ॥
भूखा कई दिनो से ही था, श्रेष्ठी का पूरा परिवार।
अन्न नही मिलने से सारे, हो जाते मन से लाचार ॥

दोहा

जाते अन्न खरीदने, प्रतिदिन श्रेष्ठी आप।
खाली हाथों लौटते, अन्न बिना चुपचाप ॥
आज किसी ही मूल्य पर, लेना अन्न खरीद।
कौन माँगता है भला, इसकी प्राप्ति रसीद ॥
व्याकुल बन कर भूख से, विलख रहे है बाल।
आश्वासन देकर समय, कितना सके निकाल ॥

उनकी देख दशा बुरी, रोती माता आप।
रोते बालक साथ में, मानो रोता पाप॥
मुट्ठी भर चावल लिए, दे सौनेये लाख।
नही निकलता आज भी, कल की कर दो राख॥
आये घर स्वर दीन था, दंपति बने निराश।
बच्चों को आता नही, सुख से श्वासोश्वास॥

राधेश्याम

अंतिम निर्णय

तड़प-तड़प कर मरने से तो, विष खाकर मरना अच्छा।
क्या होगा क्या होगा इससे, निर्णय यह करना अच्छा॥
चावल में विष आज मिला दो, और खिला दो घर-भर को।
कोई किसे नही रोयेगा, समझे समय भयंकर को॥

दोहा

किए ईश्वरी ने तुरत, वे चावल तैयार।
जहर मिलाने को उठी, करती सोच विचार॥
इतने ही में द्वार पर, आये श्रमण विशिष्ट।
मुनि दर्शन से सहज ही, टलता बड़ा अनिष्ट॥
पहले दो, पीछे करो, उसका मिश्रण आज।
सुन कर वाणी सेठ की, चकित बने महाराज॥
बोले मुनि क्या है कथा, कथा सुना दो स्पष्ट।
आश्वासन देकर स्वजन, क्या न बँटाते कष्ट॥
कई दिनों से ब्रीहि- कण, आज हुए है प्राप्त।
जहर मिला इसमे- हमें, होना आज समाप्त॥
आर्य वज्र के शिष्य ये, तेजस्वी अत्यन्त।
ऋद्धि सिद्धियों के धनी, वज्रसेन गुणवन्त॥

उन्हें याद आई तुरत, अपने गुरु की बात।
अन्तिम दिन दुर्भिक्ष का, प्राप्त हुआ साक्षात् ॥

राधेश्याम

गुरुवाणी

एक लाख सोनैयो में जो मुट्ठी चावल पायेगी।
सदन-स्वामिनी कालकूट विष, उसमें स्वयं मिलायेगी ॥
आत्म-घात करने को उद्यत, होगा वह दुखिया परिवार।
वह उसका अन्तिम दिन होगा, सुखी दूसरे दिन संसार ॥

दोहा

आर्य वज्र के शब्द भी, वज्र तुल्य है सत्य।
मिथ्या हो सकते नही, ज्यो जिन भाषित तथ्य ॥

वज्रसेन का आश्वासन

मुनि ने कहा श्राविके ठहरो, अभी मिलाना जहर नही।
एक तुम्हारे मर जाने से, मर जायेगा शहर नही ॥
बोली विष न मिलाऊँ तो क्या, करूँ बताओ हे मुनिवर ?
भूखे प्यासे बच्चों का मैं, कब तक सुना करूँगी स्वर ॥
कहा सूरि ने यहाँ तुम्हारे, घर का कोई एक सदस्य।
नही मरेगा नही मरेगा, मैं जो कहता सुनो अवश्य ॥
यद्यपि सच माना करती मै, सतों की श्रुतवाणी को।
ऐसी स्थिति मे चिन्तन करना, पड़ता है हर प्राणी को ॥
हो जाओ आश्वस्त सुबह ही, आ जायेगे अन्न जहाज।
होगा बहुत सुभिक्ष सभी को - मिला करेगा खुला अनाज ॥
चिन्ता करो न कोई जीवन-रत्न नही फिर आता हाथ।
अपने जो न समझ में आये, वह मुनियों की मानो बात ॥

ऐसे कहकर पूज्य प्रवर श्री, चले गये है अपने स्थान।
लिया नही या लिया वहाँ पर, थोड़ा बहुत अन्न का दान ॥

परिवार बच गया

विष न मिलाया, विष न खिलाया, खाया विष न किसी ने भी।
सब ने प्रभु का ध्यान लगाया, पाया मिष न किसी ने भी ॥
भरे हुए सब खाद्यान्नो से, आये सुबह जहाज बड़े।
कहते सभी लोग अब ऐसे जैनों के महाराज बडे ॥
मिलने लगा सभी लोगो को, खाने हित पर्याप्त अनाज।
दु.ख के दिन कट जाने से ही सुखी हो गया सकल समाज ॥

सुख में स्मरण

संकट से बच गई ईश्वरी, पति से बोली धर संतोष।
हमें बचाने वाले देखो, वज्र सेन मुनिवर निर्दोष ॥
हम सव जीवित है यह उनका, समझा जाये क्यों न प्रसाद।
दु:ख में सभी स्मरण करते है, सुख मे करें क्यो न हम याद ॥
कालग्रास बन जाते हम सब, मुनि जो विरत नहीं करते।
उनका कुछ न बिगड़ता जो हम, कालकूट खाकर मरते ॥
मुनिजी का सत्कार यथोचित, करना हमें चाहिये जी।
सभी चले या आप अकेले, क्यों न वहाँ हो आइये जी ॥

मै तो निमित्त मात्र हूँ

गये सभी गुरु-चरणों में कर वंदन नमन सभक्ति कहा।
हे गुरुदेव ! आपके वचनों, में है कोई शक्ति महा ॥
हम जीवित हैं यह सब उपकृति, श्रीचरणों की मान रहे।
लिए हमारे आप यहाँ पर, बहुत बड़े भगवान रहे ॥
गुरु बोले जीना मरना तो, है आयुष्याधीन बना।
मेरे वचन निमित्त मात्र है, प्रकरण किन्तु नवीन बना ॥

श्रेष्ठी बोला आप हमें अब, मार्ग मुक्ति का दिखलाओ।
आत्मा का उद्धार शीघ्र हो, ज्ञानक्रिया वह सिखलाओ॥
पाकर पूज्य प्रेरणा पावन प्रव्रज्या लेता परिवार।
पचमहाव्रत धारी बन कर, पालन करते पंचाचार॥
तेजस्वी मेधावी निकले, श्रेष्ठी के चारों ही पुत्र।
आत्मा में जो रही शक्तियाँ, वे छुप कर जायेगी कुत्र॥
चारों मुनियों के नामों पर, चार गच्छ चल पड़े स्वतंत्र।
स्वतंत्रता में रखा सुरक्षित, परंपरा का प्रचलित-मंत्र॥

दोहा

'पुष्कर' मुनि पट्टावली, देती हमें प्रकाश।
पढ़े पूर्वजों का लिखा, पुण्य भरा इतिहास॥
रायचूर चौमास में, साता रही विशेष।
कविजन ही करते यहाँ, रचना नई हमेश॥
जगत जगाने के लिए लिखते हैं कवि लोग।
मिल जाता सौभाग्य से, सुनने का संयोग॥
पढो सुनो गुणलो अगर, हो लेने की शक्ति।
मार्ग सरल है मुक्ति का, स्वीकारो जिन भक्ति।

16

प्रशंसा नहीं पची
(आचार्य आर्यरक्षित)

दोहा

प्राथमिक बोल

अन्न जिसे पचता नही, होता उसे अजीर्ण।
जिसे ज्ञान पचता नही, होता वह संकीर्ण ॥
जो न पचाता सुयश को, वह पाता अभिमान।
ज्यों सोने के थाल मे, लिया मेख ने स्थान ॥
बिना गुणों के सुयश का, उठता नही सवाल।
बहुत बड़ा अवगुण अपच, गुण तन देता गाल ॥
रहता है सब को सदा, यश अपयश का ध्यान।
यश जीवन अपयश मरण, गिनते सत समान ॥
सुयश अपच के क्या नही, होते संत शिकार।
'पुष्कर' रक्षित आर्य का, सुनो श्रेष्ठ अधिकार ॥

राधेश्याम

आर्य रक्षित आचार्य

प्रतिभाशाली प्रभावशाली, हुए आर्य रक्षित आचार्य।
जिनशासन की परंपरा में, किए इन्होंने ऊचे कार्य ॥
सारी गणिपिटिका को इनने, अनुयोगो मे किया विभक्त।
जिससे ज्ञानार्जन कर पाते, सरल रीति से संत अशक्त ॥
ज्योतिष शास्त्रों के पारंगत, सामुद्रिक के थे निष्णात।
नर नरपति सुर सुरपति आते, पूछा करते मन की बात ॥

मथुरा में पदार्पण

एक बार आचार्य प्रवर का, मथुरा मे आगमन हुआ ।
दर्शन प्रवचन सुनने की जन अभिलाषा का शमन हुआ ॥
जागृति हुई धर्म की जबरी, दुर्व्यसनो का दमन हुआ ।
दुराग्रहों पर दुर्भावों पर, मानो क्रूराक्रमण हुआ ॥
बैठे जो सशय दोला में, उन सबका प्रतिक्रमण हुआ ।
प्रायश्चित्त हुआ है उनका, जिनसे व्रत अतिक्रमण हुआ ॥

सौधर्मेन्द्र और सीमंधर

उसी समय सौधर्म स्वर्ग के, अधिक गये है महाविदेह ।
सीमंधर स्वामी के मुख से, सुनी देशना नि.सदेह ॥

दोहा

कैसे जीव निगोद के, सहते कष्ट हमेश ।
बहुत सूक्ष्मता से भरा, वर्णन सुना विशेष ॥
शकाओं का कर लिया, समाधान सप्राप्त ।
हो जाती प्रश्नोत्तरी पाकर समय समाप्त ॥

राधेश्याम

भरत क्षेत्र में है क्या कोई, ज्ञानी श्रमण विशेष महान ।
जैसा सुना आपसे वैसा, जो कर पाते हों व्याख्यान ॥
देवानुप्रिय ! भरत क्षेत्र में, सूरि आर्य रक्षित है एक ।
उनसे ऐसा सुन सकते हो, प्रश्न उठाकर नए अनेक ॥
सीमधर स्वामी के मुख से, सुनी प्रशंसा बहुत बड़ी ।
उनके दर्शन करूं अभी मैं, ऐसी अभिलाषा उमड़ी ॥

बूढ़े बन गये

बूढ़े द्विज का रूप बनाकर, मथुरा मे पा लिया प्रवेश ।
सिर पर जितने केश बचे हैं, उनमे एक न काला केश ॥

मोटी लाठी लिए हाथ में, थर - थर कांप रहा है तन ।
श्वास-प्रकोप प्रपीड़ित पहुँचा, यक्षायतन जहाँ उपवन ॥
झुकी हुई है कमर वृद्ध की, खाँसी से होता खूं-खूं ।
बालक अगर छेड़ ले इसको, तो करने लगता फूं-फूं ॥

नमस्कार और प्रश्न

सूरि आर्यरक्षित के सम्मुख, हुए उपस्थित जोड़े हाथ ।
कुछ शंकाएँ उठी आप से, समाधान क्या पा लूं नाथ ! ॥
श्रमण गये भिक्षार्थ नगर में, बैठे आर्य अकेले ही ।
वरना समाधान कर देते, छोटे मोटे चेले ही ॥
गुरु बोले—हां पूछो जो कुछ, जिज्ञासा लेकर आये ।
मुझे पूछने वाले श्रावक, कैसे अन्य जगह जाये ॥

दोहा

वर्णन सूक्ष्म निगोद का, मुझे सुना दो आज ।
कष्ट दे रहा आपको, आप गरीब निवाज ॥
जितने प्रश्न किए गए, उत्तर मिला तुरंत ।
आया करता है नही, कभी ज्ञान का अन्त ॥
श्रद्धा से मस्तक झुका, द्विजवर का तत्काल ।
बोला पूछूं एक फिर, मेरे लिए सवाल ॥

मेरी उम्र बताओ

जरा धुतारी ने मुझे, बना दिया है जीर्ण ।
कब इस जीवन से प्रभो ! होऊँगा उत्तीर्ण ॥
गुरुवर मम आयुष्य अब, कितना है अवशेष ।
बतलाने की कीजिये, मुझ पर कृपा-विशेष ॥
हाथ किया है सामनें, गुरु ने डाली दृष्टि ।
समझ गये है सूरि जी, यह न यहाँ की सृष्टि ॥

अरबों वर्षों से अधिक, उम्र हो रही व्यक्त।
आया कहीं न ध्यान मे, समाधान का वक्त ॥
सोपयोग देखा पुनः, पाया ज्ञानालोक।
बोले कृत्रिम वृद्ध हो, यह न आपका लोक ॥
भोग चुके हो उम्र जो, अधिक रही अवशिष्ट।
बूढा बोला बात सब, शीघ्र कीजिए स्पष्ट ॥

राधेश्याम

दो सागर आयुष्य आपका, सौधर्मेन्द्र स्वयं हो आप।
आप कहाँ से आये हो, यह, रूप बनाया क्यों चुपचाप ॥
सुनकर मूल रूप अब निज का, प्रगट किया है सुरपति ने।
सुरपति ने सब कथा सुनाई, सुनी ध्यान से मुनिपति ने ॥
सीमंधर स्वामी के मुख से, सुना आपका सुयश बड़ा।
इसीलिए दर्शन करने को, बरबस आना मुझे पड़ा ॥

गुप्त अहं

श्री आचार्य देव के मन में गुप्त रूप से अहं जगा।
मैं हूँ कितना ऊँचा ज्ञानी, ऐसा अपने आप लगा ॥
जाने लगे देवपति तब यो, सूरि स्वयं फरमाते है।
क्या न वंदना आप करोगे अभी श्रमण सब आते है ॥
गये हुए है बाहर मेरे, शिष्य सभी आजायेगे।
आए हो जब आप सूचना, इसकी वे भी पायेगे ॥

लाभ नहीं है

समझ गया शक्रेन्द्र सूरि की, अहंभावना को मन से।
पचा न पाये सुयश श्रवण को, प्रगट कर रहे प्रवचन से ॥
बोला सुरपति मेरा रुकना, बहुत हानिकारक होगा।
रूप और ऐश्वर्य अलौकिक, मुनि गण मन मारक होगा ॥

देवों का प्रत्यक्ष आगमन, नहीं लाभदायक होता।
सही निशान नही सधने से, खाता है सायक गोता ॥
"आये इन्द्र" शिष्य सब मेरे, कैसे पायेंगे विश्वास।
कभी कभी सच्ची घटना पर, करने लगते जन उपहास ॥
"ऐसा सब हो जाएगा" यों, कहकर वंदन किया चला।
चलते चलते द्वार वहाँ का, उत्तर दक्षिण मे बदला ॥

यह क्या हुआ ?

भिक्षाचर्या से मुनि लौटे, द्वार नही पाया अपना।
सोचा क्या हम भूल रहे है, अथवा है आया सपना ॥
लगे भटकने इधर-उधर सब, आखिर रास्ता ढूंढ लिया।
भगवन् क्या दरवाजे को भी, शिष्य बनाया मूंड़ लिया ॥
स्मित के साथ सूरिवर ने सब, घटना घटित सुना डाली।
विस्मितमना शिष्यगण बोला, सूरीश्वर हैं बलशाली ॥
गुरु को गर्व, गर्व शिष्यों को सुरपति के आ जाने पर।
जैसे बन्दर नाचा करता, बिच्छू के खा जाने पर ॥

शिक्षा और सार

अपनी स्तुति नुति पर पुष्कर-मुनि अह बताना योग्य नही।
जिसको त्याग चुके तन मन से, वह हो सकती भोग्य नही ॥
रायचूर चौमासे में कुछ लिखा जा रहा है इतिहास।
करना ही पड़ता है सब को, सच्ची घटना पर विश्वास ॥
स्तवना सुनकर नही फूलना, देना मन से नहीं महत्त्व।
निन्दा-स्तुति मे सम रहने का समता-दर्शन देता तत्त्व ॥

★

17

आचार्य सिद्धसेन दिवाकर

दोहा

शास्त्रार्थ के लक्ष्य

खडित होते है कहाँ, मेरे तर्क - वितर्क ।
प्राप्त ज्ञान में है कहाँ, अल्प वहुत सा फर्क ॥
कौन उपस्थित कर रहा, नव्य अकाट्य प्रमाण ।
किस मुख से छूटा हुआ, सही ज्ञान का बाण ॥
किसने पाई जय - विजय - किसने पायी हार ।
बिना किये शास्त्रार्थ के, प्रश्न न पड़ते पार ॥
भ्रमण किया करते पुरा - भारतीय विद्वान ।
उन सब मे भी था प्रमुख, सिद्धसेन का स्थान ॥
यात्रा पर निकले हुए, करने को शास्त्रार्थ ।
छिपा हुआ था हृदय मे, विजय प्राप्ति का स्वार्थ ॥
नृपति विक्रमादित्य की, प्रथम शताब्दी जान ।
लगा सकेगे हम सभी, इस पर से अनुमान ॥

राधेश्याम

वृद्धवादी के साथ

ऐसे ऐसे शास्त्रार्थों मे, जही कही जो जाता हार ।
कर लेता शिष्यत्व वही पर, उसी हार के सह स्वीकार ॥

जैनाचार्य वृद्धवादी का, एक बार था उग्र विहार।
मिले मार्ग मे सिद्धसेन भी, उठे वहीं पर उन्हें पुकार ॥
अभी यहाँ शास्त्रार्थ कीजिए, अगर आप विद्वान महान।
मार्ग रोककर खड़े हो गये, ऐसा ही कुछ आया ध्यान ॥
पंडित जी ! शास्त्रार्थ यहाँ पर, करना कैसे हो सम्भव।
निर्णायक की अनुपस्थिति मे, जय न पराजय मम या तव ॥
कुछ भी हो आचार्य प्रवर ! मै, नही खिसकने दूंगा आज।
बहुत दिनों से मुझे आप ही, मिले एक जैनी महाराज ॥

दोहा

शास्त्रार्थ की शर्त

पडित जी ! शास्त्रार्थ की, क्या कुछ होगी शर्त।
मापा जाता शर्त से, वाद - विवादी गर्त ॥
बोले पंडित तुनक कर, सुना न मेरा नाम।
कहिये कैसे साधु हो, कैसा करते काम ॥
सुनी न मेरी शपथ भी यही बड़ा आश्चर्य।
अभी बता देता सुनो, ओ वाचयम - वर्य ॥
हो जाऊँगा शिष्य मैं, जो जाऊँगा हार।
यही शर्त मेरी सदा, करो आप स्वीकार ॥
सिद्धसेन क्या आप है सुना हुआ था नाम।
मिलने का पहला यही, पडा आप से काम ॥
शर्त मुझे मंजूर, दो - निर्णेता का नाम।
पूरा पहले ही करें, कच्चा-पक्का काम ॥

राधेश्याम

ग्वालों की मध्यस्थता

सिद्धसेन ने नजर घुमाई, चारो ओर वहाँ पर ही।
ग्वाले लोग चराते गौएँ, कोई अन्य नहीं नर ही ॥

ग्वालबाल निर्णेता होंगे, ये तो हैं विद्वान नहीं।
चाहे ये विद्वान न हों पर, अन्य यहाँ इन्सान नही ॥
इन्हें बुला लेता हूं ऐसे, कहकर शब्द किया उनको।
जैसे तैसे पूरी करना, सिर पर चढी हुई धुन को ॥
ग्वाल आ गए, उन्हे स्पष्टत; समझाया अपना भावार्थ।
हम दोनों प्रारम्भ करेगे देखो अभी अभी शास्त्रार्थ ॥
शास्त्र किसे कहते है तब, शास्त्रार्थो को हम जानें।
जाने नही किन्तु पंडित जी, कहा आपका हम माने ॥
चलो मनोरंजन ही होगा, कहकर ग्वाल बने मध्यस्थ।
वातावरण नही झगड़े का, दोनों पक्ष शान्त अतिस्वस्थ ॥
करो आप प्रारम्भ, आप ही, करे पुण्य प्रारम्भ प्रथम।
कोई फर्क नही पड़ता है, खोया जाए समय न श्रम ॥
यही चाहते थे पडित जी, खोल दिया है दर्शन शास्त्र।
मानो महायुद्ध मे छोड़ा गया शत्रु पर यह ब्रह्मास्त्र ॥
जीव, ब्रह्म, ईश्वर, प्रकृति पर, किया विवेचन ज्ञान भरा।
प्रभावशाली वाणी में कब, सुनने मिलती हमें त्वरा ॥

पंडित जी ! रुक जाओ

ग्वाल बाल कुछ काल मौन रख, बोले अब तुम रुक जाओ।
कुछ भी नही समझ में आता, अब महाराज ! इधर आओ ॥

दोहा

सूरि वृद्धवादी बड़े, स्थिर समयज्ञ सुधीर।
सोचा इनके सामने, विषय न ले गम्भीर ॥

राधेश्याम

किसे[1] न मारो, करो न चोरी, करो न परदारा का संग।
चाहे थोड़ा भले दान दो, पाओ परभव स्वर्ग सुरंग॥
सार यही है शास्त्रार्थो का, स्वार्थ यही परमार्थ यही।
पाठ समझ में आ जाता जब, करना तब भावार्थ नही॥
बोले बूढ़े बाबा जीते, बुरी तरह पंडित हारे।
श्री आचार्य चन्द्रमा जैसे, दुनिया के पंडित तारे॥

राज सभा में चलो

बोले अब आचार्य देव - ये विद्वत्ता को क्या जाने।
विद्वानों की सभा बताए, बात वही हम सब माने॥
धारा नगरी राजसभा में, चलो चले शास्त्रार्थ करे।
स्वार्थ न साधें हम अपना बस, दुनियाँ का परमार्थ करे॥
राज सभा में गये वहाँ पर, सिद्धसेन फिर से हारे।
हुए शिष्य सविनय पंडित जी, नटै न लज्जा के मारे॥
नाम रखा है कुमुदचन्द्रमुनि, बने आगमों के निष्णात।
क्षयोपशम जिनका तगड़ा हो, उनकी ऊँची होती बात॥
सूक्ष्म विवेचन, तर्क शक्ति अति, प्रतिभा बड़ी विलक्षण थी।
इन्हे परखने और पढ़ाने की गुरु-क्रिया विचक्षण थी॥
योग्य समझकर इन्हें दे दिया, पद आचार्य देव का वर।
जो भी पद दो, जो भी पद लो, समझो सेवा का अवसर॥

---

१ नवि मारीईं नवि चोरी इ, परदारा गमन न कीजइ।
थोडसु थोड्ड दीजईं, तउ टगिमगि सग्गि जाइइं॥

अथवा

गोवालिया उठ्या गहगही, हरषित ताली देता सही।
भलो यही ज घरडो डोकरउ, नही भणियो हीज छोकरउ॥
मट्ट जे बोल्या भूत पलाय, फोड्या कान विवायो पाय।
जीत्यो घरडो हार्‌यो तू हल्ल, पाए लागो करइए गुरमल्ल॥

गुरु की अप्रसन्नता

सकल आगमों का कर डालू, सस्कृत भाषा मे अनुवाद।
कुमुदचन्द्र को ऐसा सूझा, कैसे कहे इसे उन्माद॥
महामत्र को किया अनूदित, दिखलाया श्री गुरुवर को।
अपनी इच्छा प्रगट सुनाई, नही छुपाया अन्तर को॥
अप्रसन्न आचार्य हो गये, बोले यह क्या सोचा काम।
श्री सर्वज्ञदेव से भी क्या, ऊँचा रखना अपना नाम॥
सुगम सुबोध सरल रखने को दिया लोक भाषा को स्थान।
तुम उसको उत्थापित करते, करते संस्कृत का सम्मान॥

दोहा

बारह वर्षो के लिए, सघ छोड़ दो आज।
वेष बदल करके रहो, सहो जगत की लाज॥
जो आज्ञा गुरुदेव की, है वह मुझको मान्य।
खाद्य सदा से ही रहा, जो कहलाता धान्य॥
सकल संघ चिंतित बना, सुनकर सारी बात।
अनुनय गुरु से कर रहा, खड़ा जोड़कर हाथ॥
कुमुदचन्द्र करने लगे, मन से पश्चात्ताप।
गुरुवर मेरी भूल को, माफ कीजिए आप॥

राधेश्याम

अगर सात भूपतियो को तुम, जैनधर्म की दीक्षा दो।
तब तुम वापिस आ सकते हो, नये दण्ड से शिक्षा लो॥
प्रभावना होगी शासन की, होगी शुद्धि तुम्हारी भी।
गुरु की शिक्षाए होती है, कुछ प्यारी कुछ खारी भी॥

महाकाल के मन्दिर में

अच्छा कहकर सिद्धसेन अब, करते गुरु से भिन्न विहार।
उज्जयिनी मे आये सोए, चन्द्रमौलि पर पाँव पसार ॥
पुजारियों ने भक्तों ने जब, देखा डाँटा कहा सुना।
हे मुनिराज ! आपने ऐसा क्यों मूर्खोचित कार्य चुना ॥
गई नृपति के पास शिकायत, सुनकर भूपति लाल हुए।
कोड़ों से उसको पीटो तुम, मदिर के रखवाल हुए ॥
आए सेवक कोड़े लेकर, करने लगे प्रहार प्रबल।
अन्तःपुर चीत्कारे करता चारो ओर मची खलबल ॥
हटता आप न पांव हटाता, हँस - हँस कर खाता कोड़े।
अन्तःपुर के संरक्षक नर, हाय - हाय करते दौड़े ॥
कुछ न दीखता कुछ न बोलता, पड़ते है अज्ञात प्रहार।
कोमलांगिनी स्त्रियाँ बताओ, कैसे सहन करेगी मार ॥
राजा समझ गया बोला है मुनि को कोड़े मत मारो।
ठहरो मैं चलता हूँ अपनी भूल हुई है स्वीकारो ॥

दोहा

ये हमारे भगवान हैं

सोए है शिवलिंग पर, मुनि जी पाँव पसार।
परिचय पूछा नृपति ने, गलती कर स्वीकार ॥
परिचय मेरा रह गया, क्या अब भी अज्ञात।
पहले ही यह पूछते (जो) पूछ रहे अब बात ॥
मारो मारो और तुम, जितने सकते मार।
अन्तःपुर मे जो उठी, सुनी न क्या चीत्कार ॥
नृप बोला शिवलिग है, हम सबका भगवान।
कैसे इनका कर रहे, आप स्वयं अपमान ॥

मुनि बोले भगवान तो, वीतराग - भगवान ॥
डमरू और त्रिशूल ये, उनके नही निशान ।
नहीं परिग्रह, भय नही, नहीं क्रोध अनुराग ।
होते है भगवान वे, जो देते ये त्याग ॥

एक नया चमत्कार

नृप बोला उनको यहाँ, प्रगट करो प्रत्यक्ष ।
भक्त बनेंगे आपके, सिद्ध करेंगे लक्ष ॥
पद्मासन स्थिर कर वही, लगा लिया है ध्यान ।
आदिनाथ जिन स्तोत्र का, किया नव्य निर्माण ॥
एकादशवे श्लोक का, जब आया है पाठ ।
प्रतिमा पार्श्व जिनेश की, निकली धरती फाट ॥
प्रतिमा ने शिवलिग का, ग्रहण कर लिया स्थान ।
सिद्धसेन कहने लगे, देखो ये भगवान ॥
वीतराग प्रभु है यही, करलो दर्शन आप ।
जिनकी स्तवना अर्चना, दूर हटाती आप ॥
शिष्य सानुचर नृप बना, संशय रहा न चित्त ।
चमत्कार के सामने, ठण्डे पड़ते पित्त ॥

सम्मान और पद

राजमान्य गुरुजी हुए, राजा इनका भक्त ।
राजदत्त-पद महल सुख, होने लगे प्रयुक्त ॥
राजसभा में मिल गया, ऊचा पद सम्मान ।
लोगों ने माना कहा, धन से ऊंचा ज्ञान ॥
प्राप्त ज्ञान-सम्मान का, हो जाता अभिमान ।
जिसे नही अभिमान हो, वह कोई भगवान ॥

राधेश्याम

सर्वज्ञ पुत्र का पद

राज सभा में उन्हें एक दिन, नृप ने मन से किया प्रणाम।
उच्चस्वर से धर्मलाभ दे, सिद्धसेन ने साधा काम॥
राजा बोला आप वस्तुतः, हैं सर्वज्ञपुत्र साक्षात्।
स्वयं जानते तथा बताते, किसी व्यक्ति के मन की बात॥
ऐसे आचार्यों के द्वारा, जिन-शासन शोभित अत्यन्त।
युगानुसारी परिवर्तन से परिचालित रहता है पन्थ॥

दिवाकर का पद

पूर्व देश, पुर कुमरी, नरवर - देवपाल का नाम बड़ा।
करते हुए विहार वहाँ पर, जाने का अब काम पड़ा॥
देवपाल ने जैनधर्म को, भक्ति सहित है स्वीकारा।
सुना हुआ था सिद्धसेन का, परिचय और सुयश सारा॥
नृपति विजयवर्मा ने नृप पर, एक बार आक्रमण किया।
शिष्य सुरक्षा-हेतु सूरि ने, सभी तरह से शरण दिया॥
स्वर्ण[1] और योद्धा रच करदे, नृप को विजयी बना दिया।
नाम दिवाकर का घोषित कर, राजकीय सम्मान किया॥

गुरुजी आ गये

इन सब घटनाओं को गुरु ने, सुना किया है मन से दुःख।
कैसे काम लगा है करने, मेरा ही वह शिष्य प्रमुक्ख॥
सोना सैनिक रच देने का, होता श्रमणाचार नही।
जो अनुशासनहीन बना हो, रहता उसे विचार नही॥
मैं जाऊ समझाउँ लाउँ, उसे संघ में अपने स्थान।
योग्य व्यक्तियो के द्वारा ही, शासन बनता सदा महान॥

---

१ सुवर्ण विद्या से सोना तथा सरसव विद्या से योद्धा बना सकते थे।

सोच-समझ कर वेष बदल कर, कुमरि नगर गुरुवर आये।
देखो सिद्धसेन को कैसे, ज्ञान कराये अपनाये ॥

बाधति बाधते

राज सभा मे जाने को वे, बैठे स्वय सुखासन पर।
एक आदमी और चाहिये नजर घुमाई इधर-उधर ॥
वही वृद्धवादी बैठे थे, बोले ओ बूढे ! आओ।
एक तर्फ से इसे उठाओ, राजसभा तक पहुँचाओ ॥
बूढे ने अपने कंधों पर दड पालकी का धारा।
डगमग होने लगी पालकी, सिद्धसेन ने पुचकारा ॥
बूढ़े बाबा ! कधों को क्या दु:ख पहुँचाता है यह दड।
चढने का घमड मुझे पर, राजकीय सम्मान अखंड ॥
दड न जितना दुःख देता है, दुःख देता है वचन अशुद्ध।
कैसे बाधति[1] बोले बोलो, सिद्धसेन सम महाप्रबुद्ध ॥

नीचे उतर पड़े

सिद्धसेन ने सोचा मेरी, भूल बताने वाले कौन ?।
सूरि वृद्धवादी गुरुवर ही, कही यही पर आये हो न ? ॥
झुके, निहारा, नीचे उतरे, पकड़े पाँव विनय करते।
इतने ऊँचे शिष्य आपके, गुरुजी से कितने डरते ॥
गुरु बोले-ओ शिष्य ! तुझे क्या, राजनीति मे फँसना है।
त्यागे हुए मोह माया के, दल-दल में क्या धँसना है ॥
इसीलिए आया था आया, करने को कुछ धर्म-प्रचार।
श्रमणाचार क्रियाकांडो का, किंचित् भी आया न विचार ॥

---

१ अयमान्दोलिका दड, स्कध तव किं बाधति ?
न बाधते तथा दड, यथा बाधति बाधते ॥

चल वापिस चल छोड़ राजसुख, फुल्ल[1] न तोड़हु अणहुल्ली।
कहाँ वदामी हलवा ताजा, कहाँ गेहुओं की थुल्ली॥
सही अर्थ गुरु ने समझाया, सिद्धसेन आये निज स्थान।
प्रायश्चित्त लिया गुरुवर से, सेवाएँ दी ज्ञान - प्रधान॥

दोहा

बहुत बडे तार्किक हुए, सिद्धसेन आचार्य।
हुआ इन्ही के हाथ से, जैन न्याय पर कार्य॥

राधेश्याम

इनके तर्क तेज के सम्मुख, फीके पडे सकल विद्वान।
अपने युग के विद्वानो मे, इन ने पाया ऊचा स्थान॥
जब ये हुए दिवंगत तब सब, उड़ने लगे वादि-खद्योत।
प्रतिद्वन्द्वी क्या नही चाहते, सबल शत्रु की प्रतिपल मौत॥
वैतालिक की अर्द्धाली[2] को, साध्वीजी ने पूर्ण किया।
जान लिया श्री सिद्धसेन ने, निज जीवन संपूर्ण किया॥

प्रशस्ति और शिक्षण

पुष्कर मुनि ने कुछ पद्यों मे, लिख डाली जीवन गाथा।
रायचूर के चौमासे मे, रही हमारे सुख साता॥

---

१ गाथा—अण हुल्ली फुल्ल म तोडहु, मन आराम न मोडहु
मण कुसुमेंहि अच्चि निरजणु, हिंडइ काइ वणेण वणु

अर्थ—यह मनुष्य शरीर जीवन रूपी कोमल फूलो की लता है, मिथ्या अभिमान के प्रहारो से इसे मत तोडो। मन के यम नियम रूपी उद्यानो को भोगो से नष्ट मत करो। सद्‌गुण रूपी पुष्पो से निरजन देव (सिद्ध) की स्तुति करो। ससार के मोहमाया मे क्यो गोते खा रहे हो।

२ स्फुरन्ति वादि खद्योताः साम्प्रत दक्षिणापथे।
नून अस्तगतो वादी, सिद्धसेनो दिवाकर॥

पढने-सुनने और सुनाने, से बढता है ज्ञान सदा ।
दिन चढने के साथ साथ ज्यों, चढता है भास्वान सदा ।।
इतिहास की बातों में हम फर्क नही डाला करते ।
जैसा स्वर्ण आपका वैसा, सोनी तो गाला करते ।।

दोहा

जो भी इसमें सार है, ग्रहण करे वह आप ।
अपने अपने देश का, अलग अलग है नाप ।।

18

युगप्रधानाचार्य नागार्जुन

राधेश्याम

अहं न करो

ज्ञान विवेक, समृद्धि, सिद्धि, सुख, ऋद्धि वृद्धि पर मत फूलो।
जो है पास आपके उससे, अधिक और है मत भूलो॥
तुमने देखा सुना न जाना, कहते हो मैं ही हूँ एक।
अहँकार के तले बहुत ही, बड़ा छिपा रहता अविवेक॥
किसी वस्तु का अंत नही है, अहकार तब क्यों करना।
कब से बहता आया, बहता, क्या न रहेगा गिरि-झरना॥

नागार्जुन की सिद्धि

रसायनाचार्यों में देखो, नागार्जुन का नाम प्रसिद्ध।
कड़ा परिश्रम किये बिना ही, बना नहीं जाता रससिद्ध॥
पादलिप्त आचार्य देव के, चमत्कार की सुन गाथा।
मिलने की उत्सुकता जागी, मिलने से मन भर जाता॥
छोटी सी तुम्बी रस से भर, भेजी पादलिप्त के पास।
आज्ञाकारी शिष्य ले गया, किया निवेदन धर उल्लास॥

ज्ञानपरक-संवाद

परम परिश्रम से इसे, किया गया तैयार।
भेजा है गुरुदेव ने, लो यह लघु उपहार॥

तप्तायस पर जो इसे, थोड़ा सा दे डाल।
तो सोना बनता तुरत, रस का यही कमाल॥
सहजभाव से सूरि ने, प्रश्न किया तत्काल।
क्यों भेजा मेरे लिए, रख लेते संभाल॥

राधेश्याम

वे अपना परिचय देते है मैंने यह रस सिद्ध किया।
इसी सिद्धि ने नागार्जुन को, चारों ओर प्रसिद्ध किया॥
कहा सूरि ने अगर नही हम, अवगत होते इस रस से।
तो क्या अन्तर आता उनके, क्या लेना देना यश से॥
आप न जान रहे हो भगवन्! वे हैं वहुत बडे रससिद्ध।
ऐसा हुआ न कोई पीछे, ऐसे कहते रहते वृद्ध॥
मुझे प्रभावित करने को क्या, किया गया है यह उपक्रम।
ऐसा उद्यम करने में क्या, मानी जाती कही शरम॥
यह तो उनका अहभाव है, अह नही रससिद्धि बड़ी।
जिसे न विद्यामद हो, ऐसा, करने की क्या उसे पड़ी॥
दभी आरभी बतलाते, करके कुछ दिखलाएँ आप।
तब गुरुदेव हमारे मन पर, जग पर स्वत. पडेगी छाप॥

प्रस्रवण भर दिया

गुरु ने ले उस रसतुम्बी को, उलट दिया है धरणी पर।
कर प्रस्रवण उसी मे बोले, शांत भावना वाले स्वर॥
जाओ अपने गुरु को देना, अहं नष्ट हो जायेगा।
किसके पास सिद्धि है कैसी, स्वतः स्पष्ट हो जायेगा॥
क्रोध, दु.ख, विस्मय जो आया, उसे दबाया चला तुरंत।
अपने गुरु नागार्जुन से सब, सुना दिया अधुनापर्यन्त॥

शिला सोने की हुई

नागार्जुन ने क्रोध-विवश हो, ले तुम्बी को फोड़ा है।
पड़ी शिला पर उसे पछाड़ा, नही काम का छोड़ा है॥
उठने लगी शिला से लपटे, मानो कही लगी हो आग।
नागार्जुन ने सोचा ऐसा देखा नही आज तक त्याग॥
शांत हुई जब अग्नि शिला वह, स्वर्णमयी ही नजर चढी।
पत्थर को सोना कर देने की विद्या मैंने क्यो न पढ़ी॥
नागार्जुन का अहंभाव सब, चूर-चूर हो गया वही।
पादलिप्त के पास शक्ति है, अन्य किसी के पास नही॥

मै वहीं जाऊंगा

छेद - भेद - कष - ताड़ देखकर, दोनों मन संतुष्ट हुए।
सूरि शिष्य के अवहेलन पर, नही जरा भी रुष्ट हुए॥
पश्चात्ताप भरे नैनों से, नागार्जुन को देख रहा।
दृष्टि परस्पर मिली भाव भी, गुरु शिष्यों का एक रहा॥
नागार्जुन बोले-मैं जाता, पादलिप्त के चरणों में।
मुझे नही विश्वास रहा है, अपने पूर्वाचरणो मे॥
तुम चाहो जो करो शिष्य भी, होता अपने लिए स्वतंत्र।
मेरे पीछे बंध जाने का, मैंने दिया नही गुरु-मंत्र॥

पादलिप्त के पास

ऐसा कहकर नागार्जुन, अब पहुँच गए गुरुवर के पास।
गुरुजन भक्तजनों को देते, पूर्णतया अपना विश्वास॥
चमत्कार मत दिखलाना तुम, मना किया है स्नेह सहित।
स्नेह रहित शिक्षाएँ गुरु की, बन जाती है छेह सहित॥
विचरण करने लगे साथ में, भक्ति भावना दिखलाते।
भक्ति रहित जो शिक्षा लेते, वे न सफलताएँ पाते॥

पादलिप्त आकाशगमन भी, लेपक्रिया द्वारा करते।
विराधना जीवों की कम हो, भू पर चलने से डरते॥
लगे जानने नागार्जुन भी, जड़ी बूटियों के गुण - धर्म।
पादलेप की विधि जानूँ अब, जानूँ क्रिया तथा गुण - कर्म॥

एक सौ सित्तर जड़ी

एक बार आचार्य चरण के प्रक्षालन का लेकर जल।
गंध-स्पर्श-रस द्वारा उसका, जान लिया है भेद सकल॥
इक शत सित्तर जड़ी बूटियों, का जाता है नाम पता।
ऐसे ही इसकी विधिवत्ता, इनको देता कौन बता॥
लेप बनाकर लेप लगाकर, भरी गगन में स्वल्प उड़ान।
वापिस गिरे धरा पर आकर, मन उड़ने से किन्तु मुड़ा न॥
बार - बार उड़कर गिर जाते, पूर्ण नही उड़ पाते थे।
गिरते फिरती उसी क्रिया में, तत्पर बन जुड़ जाते थे॥
गुरु ने पूछा क्या करता है, बात बता डाली सारी।
पद-प्रक्षालित जल पर से ही, की है इतनी तैयारी॥
गुरु बोले सब द्रव्य सही है, किन्तु नही पाया गुरु गम।
गुरुगम जबतक हाथ न लगता, सफल नही बन पाता श्रम॥
कृपा करो गुरुदेव शिष्य पर, विधियाँ बतलादो अपनी।
कर ही पाये होगे इतनी, सेवा से मेरी तपनी॥

गुरुगम लो

लेप चावलो के धोवन से, या काँजी से करते है।
उड़ पाते वे गरुड़ तुल्य ही, नही धरा पर गिरते है॥
वैसा करके लेप लगाया, उड़ा गरुड़ की भांति गगन।
देख सफलता नाच उठा है, नागार्जुन का अन्तर मन॥

गुरुदक्षिणा में दीक्षा

गुरु बोले - दो दान दक्षिणा, जो चाहो आदेश करो।
जैनधर्म में दीक्षा ले लो, श्रमण योग्य परिवेष करो॥
एक यही आदेश एक ही, इच्छा है मेरे मन की।
योग्य व्यक्ति के बिना न होती, सेवा श्री जिनशासन की॥
नागार्जुन ने दीक्षा ले ली, पढ़े-लिखे विद्वान बने।
युगप्रधानाचार्य बने, वे विद्या - शक्ति - निधान बने॥

पालीताणा है

गुरु की स्मृति में बसा दिया है, पादलिप्त पुर एक बड़ा।
देखो आज उसी ही का तो, पालीताणा नाम पड़ा॥
शत्रुंजय की सुखद तलेटी - गुरुशिष्यों को करती याद।
इतिहासों की बातों पर हम, नही छेड़ते कभी विवाद॥

दोहा

पूर्ति और नाम

पुष्कर मुनि की लेखिनी, लिखती नव्य प्रबंध।
जिनशासन के सह जुड़ा, जिनका शुभ संबंध॥
जबतक जिन शासन सुखद, तबतक उनका नाम।
श्री जिनशासन के लिए, किए जिन्होंने काम॥
किए जिन्होंने काम शुभ, जीवित उनके नाम।
नाम क्यों न जीते कहो, जो करते हैं काम॥
रायचूर चौमास का, लिखा गया है नाम।
लिखने से मिलता न क्या, जीवन में विश्राम॥

युगप्रधान यंत्रानुसारी संक्षिप्त परिचय

जन्म—वी० नि० सं० ७९३
जन्म स्थान—सौराष्ट्र
दीक्षा—वी० नि० स० ८०७
गुरु का नाम—आचार्य हिमवन्त
पिता का नाम—सग्रामसिंह क्षत्रिय
माता का नाम—सुव्रता
युगप्रधान पद—वी० नि० सं० ८२६
स्वर्ग गमन--वी० नि० सं० ९०४
सर्व आयु—१११ वर्ष

19

देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण

राधेश्याम

सब कुछ यही है

सुरतरु कूटशाल्मली आत्मा, मित्र शत्रु भी है आत्मा।
देव मनुज नारक तिर्यङ् है, संसारी भी सिद्धात्मा॥
शब्द रूप रस गंध स्पर्श से, रहित सहित है जीव यही।
पापी धर्मात्मा मिथ्यात्वी, सम्यक्त्वी भी यही सही॥
क्षण मे भाव पलट जाते है, जो न पलटते जीवन भर।
जैसे गीतकार का देखो, पलटा करता पल मे स्वर॥
अगर नही परिवर्तन हो तो, हो जाये निष्फल पुरुषार्थ।
व्यय उत्पाद ध्रौव्य का चिन्तन किया गया है जगत हितार्थ॥

दोहा

श्री देवर्द्धि क्षमाश्रमण, उदाहरण है एक।
उनके जीवन से हमें, मिलता स्पष्ट विवेक॥
वेरावल[१] पाटण नगर, नृप अरि दमन विशिष्ट।
प्रजा प्रेम सुख-शांति को, जिसने माना इष्ट॥

राधेश्याम

एक कर्मचारी राजा का, जिसका था कार्पद्धिक नाम।
काश्यपगोत्र पवित्र भावना, करता सदा नीति से काम॥

---

१ सौराष्ट्र के समुद्री तट पर

पद साधारण था पर उसका, तेज असाधारण भारी।
तेजस्विता और गुणवत्ता, प्रतिनर की होती न्यारी॥
शील रूप सौभाग्यवती थी, कलावती पत्नी सुन्दर।
उसकी चंचलता को मानो, चुरा ले गई चक-चुन्दर॥
एक रात्रि में उसने देखा बड़ा ऋद्धिधारी निर्जर।
उसी समय में उसने धारा, रत्नकुक्षि मे गर्भ प्रवर॥
गर्भ काल संपूर्ण हो गया, जनमा बालक सुखकारी।
पापी मात-पिता की होती, संतति सबको दुखकारी॥
नाम रखा देवर्द्धि पुत्र का, सपने के अनुसार भला।
काम, राम, विश्राम, नाम के, बिना कभी क्या काम चला॥

मृगया की टेव

शिक्षा समुचित हुई किन्तु वह लगा खेलने अति मृगया।
मृगया-व्यसनी-लोग समझते, क्या होता है धर्म-दया॥
माता और पिता ने टोका, समझाया सदुपाय किये।
सुत बोला फिर मुझे न कहना, रहना सुत का प्यार लिये॥
योग्य समय वय हो जाने पर, पाणिग्रहण[1] सस्कार हुआ।
छोड़ न सका शिकार, व्यसन का इतना स्वय शिकार हुआ॥
मात-पिता का साया सर पर, घर पर माया की छाया।
पञ्चेन्द्रिय-सुखभोग रोग से, रहित मिली सुन्दर काया॥
प्रतिदिन मृगया खेला करता, दिखलाता अपना वीरत्व।
क्षत्रियत्व का धर्म समझकर, देते मन से बड़ा महत्त्व॥
चाहे जैसा युग हो चाहे, जैसे युग के रहे विचार।
प्राण किसी के ले लेने का, किसे कौन देता अधिकार॥

---

१ दो कन्याओ के साथ विवाह हुआ।

पूर्व जन्म का संबंध

पूर्व जन्म के संबंधों से, प्रेरित एक हुआ नव सुर।
उसने इसको समझाने के लिए किए सदुपाय प्रचुर ॥

नही प्रभाव पड़ा किंचित् भी, मृगया से न निवृत्त हुआ।
दिन - दिन दूना रात चौगुना, वह तो अधिक प्रवृत्त हुआ ॥

अन्तिम दिन

किसी बात की अति होने से, होता ही है उसका अन्त।
सुख का हो, दुःख का हो चाहे, नियम प्रकृति का शुभ अत्यन्त ॥
एक बार वह एक भयानक वन में खेल रहा आखेट।
भोले मृग-पशुओं के टोले, चरते भरते अपना पेट ॥
यह मारा वह मारा, मारे गये जानवर वहाँ अनेक।
जो न समझता पर पीड़ा को, उसका रहता कहाँ विवेक ॥
इतने में संबंधी सुर ने, सिह सामने खड़ा किया।
दोनों तर्फ बनाये सूअर, पीछे गहरा गढ़ा किया ॥
भीषणतम गर्जारव बिजली, लगी चमकने चारो ओर।
पानी ही पानी कर डाला, लगा बरसने बस घन घोर ॥
घबड़ाया देवर्द्धि देखकर, बचने का अब पथ नही।
प्राणिमात्र भी यही चाहते, हो प्राणों का अन्त नही ॥
भगवन् ! किसी तरह से मुझ को, आज बचालो विपदा से।
"चेत चेत है समय अभी तक" पड़े न हाथो से पासे ॥
आप कहोगे वही करूंगा, संकट से उद्धार करो।
हुई नभोवाणी पशुओं का, अब से बन्द शिकार करो ॥
सिंह न दीखा सूअर न दीखे, गड्ढा नही, नही घन बीज।
दैविक चमत्कार भी कोई होती है दुनियाँ मे चीज ॥

दीक्षा के लिए

समझा - बूझा स्वरूप सत्य का, पहुँचाया सद्गुरु के पास ।
बिना सूर्य के बिना सूरि के, नही जगत को मिला प्रकाश ।।
भय से प्रीति बनाने की भी, रीति नही होती कच्ची ।
जब जो शास्त्र हाथ आ जाये, पद्धति वह होती अच्छी ।।
गुरु ने ज्ञान सुनाया इसने, गुरु-चरणो में ली दीक्षा ।
दीक्षा क्या है ? शुद्ध प्रेम से, जीवन जीने की शिक्षा ।।

दीक्षा के बाद

ग्यारह अंग पढ़े है सत्वर, एक पूर्व का ज्ञान पढा ।
पढ़े बिना कोई भी मानव, ओरों से आगे न बढ़ा ।।
लिखे अनेकों ग्रन्थ सत भी किए इन्होंने हाथों से ।
कार्य जिन्हे करना वे रहते परे निकम्मी बातो से ।।

आगम-वाचना

आगम[1] वाचन का आयोजन, बलभीपुर[2] मे किया गया ।
विश्रृंखलित पड़े थे उनको, लिपिबधन मे लिया गया ।।
जो कुछ जिनकी स्मृति-मति मे थे, सबको करवाया लिपिबद्ध ।
कैसे इधर-उधर बिखरेगा, जो सामान चर्म से नद्ध ।।

परम्परा में

आर्य सुहस्ती के शिष्यो में, गणना इनकी होती है ।
परंपरा से जुड़े हुए ही, मुनिजन गण के मोती है ।।
इन्हे देव-वाचक भी कहते, इसमे कुछ मतभेद नही ।
जीवित हो संतान वहाँ तक, शासन का उच्छेद नही ।।

---

१ वी० नि० ९८०
२ सौराष्ट्रान्तर्गत

जय जिन शासन जयजिनवाणी, जय अरिहंत सिद्ध आचार्य ।
उपाध्याय मुनिराज धर्म जय, जय जय देश हमारा आर्य ॥
सतावीसवें पद पर इनका, नाम अमर जिनशासन में ।
पदाधिरूढ़ सत्पुरुषों का तप, रहता स्थिर सिंहासन मे ॥

दोहा

जो आगम उपलब्ध है, आज पुस्तकाकार ।
क्षमाश्रमण देवर्द्धि का, बहुत बड़ा उपकार ॥
पुष्कर हम माने सभी, उनका श्रम आकार ।
क्योंकि आगमों से मिला, हमें संयमाचार ॥
रायचूर[1] चौमास की, यही बड़ी उपलब्धि ।
मथा यहाँ इतिहास का, बहुत पुराना अब्धि ॥

---

१ स० २०३३

20

आचार्य श्री हरिभद्रसूरि

राधेश्याम

जो ज्ञानी अभिमानी होता, उसे न मिलता ज्ञान नया।
नमनशील के प्रति सद्‌गुण का, सबसे पहले ध्यान गया॥
जहाँ और जैसे भी पाये, लेते जाये ज्ञान नया।
देखे इसके लिए कहाँ पर, किसके द्वारा लिखा गया॥
श्री हरिभद्रसूरि का सुन्दर, पढ़ो ध्यान-पूर्वक इतिहास।
ऐसे उज्ज्वल नक्षत्रों से, दीप्तिमान है योगाकाश॥

दोहा

सरस्वती कठाभरण, न्यायविचक्षण नाथ।
वादिमतंगजकेशरी, उपाधियाँ प्रख्यात॥
राजपुरोहित पद प्रवर, सुरतरु सम सम्मान।
वसुधाधिपति जितारि[1] के, माने जाते प्रान॥

राधेश्याम

विचित्र वेष-भूषा

चित्रकूट के राजमार्ग पर, शिविका मे बैठे जाते।
अपना वेष विचित्र बनाते, चिन्ह साथ मे ही लाते॥
जम्बू की टहनी हाथों मे, स्वर्णपट्ट से बधा उदर।
एक कुदाल, जाल सीढ़ी को, रखते अपने पास प्रवर॥

---

१ चित्तोड के राजा थे।

इन सब चीजों को रखने का, आशय हास्यास्पद जैसा।
जिसको जैसा रुचता है वह, रख सकता साधन वैसा ।।

दोहा

उद्देश्य यह था

सारे जम्बूद्वीप में, मेरे सा विद्वान।
नही मिलेगा दूसरा, कहता प्रथम निशान ।।
भरा हुआ है ज्ञान से, फट जायेगा पेट।
स्वर्णपट्टिका से रखा, चारों ओर लपेट ।।
व्यक्ति पराजित जा छुपे, अगर रसातल मध्य।
उसको इसी कुदाल से, खोद निकालूं सद्य ।।
जो छुप जाये अब्धि में, उस पर डालूं जाल।
जैसे तैसे भी उसे, लाऊँ तुरत निकाल ।।
उड़ जाये आकाश में, जो मेरे से हार।
सीढ़ी पर चढ़कर तुरत, लाऊँ उसे उतार ।।
जिसके वाक्यों का मुझे, अगर न आये अर्थ।
उस दिन से मेरा वही, होगा सुगुरु समर्थ ।।

शिविका स्थित श्री राजपुरोहित, राज सभा मे जाते थे।
पीछे लोग साथ में चलते, वे जयघोष बुलाते थे ।।
राजपुरोहित को पद-मद था, और ज्ञान-मद था भारी।
अपनी कीर्त्ति कामिनी अपनी, किसे नही होती प्यारी ।।
कोई अपयश नही चाहता, सुयश चाहते लोग सभी।
सुयश अहं मे परिणत हो वह, हो जाता है रोग कभी ।।

हाथी का उपद्रव

इतने ही में भागे भागे, चिल्लाते आते कुछ लोग।
बचो बचो पागल हाथी से, कही न तुम बन जाओ भोग ।।

घुसो घरों में या गलियों मे, चढो छतों पर जाकर सब ।
ऐसे कहते कहते दौड़े-दौड़े ये नृप-चाकर तब ॥
शिविका छोड़ दौड़कर भागे याद नही आया जयघोष ।
राजपुरोहित जी ने जाना, कैसा आज कर्म का दोष ॥
जाऊँ कहाँ कहाँ पर भागूं, खड़ा रहूँ या यही कही ।
मानो भगने की छुपने की, बेला भी अब रही नही ॥

दोहा

सट करके दीवार से, खड़े हो गये आप ।
डरा हुआ रोता बहुत, या रहता चुपचाप ॥
कान लगे दीवार से, सुनने को आवाज ।
उसी उपाश्रय मे वहाँ, साध्वीजी महाराज ॥[1]
मधुर स्वरो से कर रही, शास्त्रों का स्वाध्याय ।
ज्ञान स्थैर्य का समझती, सीधा सरल उपाय ॥
रटे बिना होती नही, कोई गाथा याद ।
रटन-पठन का जानते, विद्वज्जन ही स्वाद ॥
गजभय से वर्जित बना, इतने मे वह स्थान ।
राजपुरोहित सुन रहे, लगा एक सा ध्यान ॥
सुनने पर भी शांति से, समझ न पाये अर्थ ।
ज्ञान और अभिमान सब, समझा अपना व्यर्थ ॥

---

१ **चक्कि दुग्गं हरिपणगं पणगं चक्कीण केसवो चक्की ।**
केसव चक्कि केसव दुचक्कि, केसो अ चक्की अ ॥

इस गाथा मे १२ चक्रवर्ती एव नौ वासुदेवो का क्रम बतलाया गया है । पहले एक चक्रवर्ती फिर पाँच वासुदेव, फिर पाँच चक्रवर्ती एक वासुदेव, एक चक्रवर्ती एक वासुदेव, एक चक्रवर्ती एक वासुदेव, दो चक्रवर्ती एक वासुदेव और एक चक्रवर्ती हुए ।

जाऊँ पूछूं अर्थ अब, करूँ हार स्वीकार।
महापुरुष के देखलो, कितने सरल विचार ॥

राधेश्याम

याकिनी से बात

चढे उपाश्रय की सीढी पर, अन्दर से आई आवाज।
कौन पुरुष ऊपर आता है, यहाँ साध्वियाँ रही विराज ॥
सूर्य अस्त होगया यहाँ पर, पाते पुरुष प्रवेश नही।
रुको वहीं पर बढो न आगे, आने का आदेश नहीं ॥
मैं हरिभद्र पुरोहित नृप का, रखता हूं कुछ जिज्ञासा।
आप उसे पूरी करदो जी, ऐसी मेरी अभिलाषा ॥
चिक चिक क्या करती थी ? चिक चिक करता है गीला आंगन।
प्रश्नोत्तर से अरस-परस वे, हर्षित होते मन ही मन ॥
विनम्रतापूर्वक फिर पूछा, उसका अर्थ बता दे आप।
नही समझने पाया मै तो, अतः चला आया चुप-चाप ॥
कहा याकिनीमहत्तरा ने, श्रीजिनभद्रसूरि आचार्य।
उनके पास चले जाने से, बन जायेगा वांछित कार्य ॥
कहाँ मिलेगे ? इसी नगर में, क्यो न आप भी साथ चले।
हम न रात में निकला करती, तुम आओ तो प्रात चले ॥

सूरि का सान्निध्य

गये पुरोहित जी अपने घर, नीद नही आई निशि भर।
जिज्ञासा ने उनके मन मे, बना लिया था अपना घर ॥
प्रातः होते ही उठ आये साध्वी जी को साथ लिया।
भाव सहित जिनभद्रसूरि का प्रथम बार साक्षात् किया ॥
हेतु रहित आगमन न होता, नमन सहित बतलाया है।
उस गाथा का अर्थ बताएँ, जो न समझ मे आया है ॥

दीक्षा और आचार्य

पूर्वापर सबंध बिना कब, जाना जाता है गाथार्थ ।
इसके लिए मुझे जो करना, दो आदेश आप गीतार्थ ॥
जैन आगमों को पढ़िये बस, मिला तुरत उत्तर सक्षिप्त ।
मैं हूं शिष्य आपका भगवन्, ज्ञान पढा कर कर दो तृप्त ॥
दीक्षा लेने को प्रस्तुत हूँ, दीक्षा लेता वैरागी ।
मैं लेता हूं आप दीजिए, वैरागी हूँ मै त्यागी ॥
मुझे ज्ञान का अहकार है, अहंकार शिव का बाधक ।
विनयी श्रमणाचारक्रिया का, हो सकता है आराधक ॥
उसी एक गाथा से मेरा, अहंकार सब नष्ट हुआ ।
मै न जानता कुछ भी अब तक, आशय सारा स्पष्ट हुआ ॥
बहुत योग्य विद्वान समझ कर, दीक्षित किया गया हरि को ।
बोध नही पाता साधारण नर अपने घर पर करि को ॥
योग्य पुत्र पा योग्य शिष्य पा, पिता सुगुरु हर्षित होते ।
बन जाता अपनत्व वही, हम जिनसे आकर्षित होते ॥
अध्यवसाय लगन के द्वारा, आगमाब्धि का कर मन्थन ।
पारंगत विद्वान हो गये, करने लगे नया चिन्तन ॥
अपना पदाधिकारी चुन कर, चिन्तामुक्त बने जिनभद्र ।
योग्य योग्यताओं की करते, करवाते आये है कद्र ॥

हंस और परमहंस

शौचक्रिया के लिए कभी वे जंगल में थे गए वहाँ ।
अपने ही भानेज युगल को, देखा, पूछा, यहाँ कहाँ ? ॥
मुख पर छाई हुई मलिनता, दुःखित घोषित करती है ।
जैसी चित्त भावना होती, मुख पर वही उतरती है ॥

पूज्य पिताजी से अपमानित हो, हम आये घर को छोड़ ।
घूम रहे है इधर-उधर बस मिला न हमको कोई ठोड़ ।।
शिष्य बना लो हमें आप अब, कठिन निभाना श्रमणाचार ।
प्रव्रज्यार्थी है हम दोनो, हमें नही रुचता संसार ।।
निश्चय अडिग समझकर उनको सविधि बनाये शिष्य तुरंत ।
हंस दूसरा परमहस ये विनयी मेधावी अत्यन्त ।।

एक बार की बात

बौद्ध प्रमाण-शास्त्र विकसित है, एक बार यह बात कही ।
अपने श्रमण योग्य इसमे हो, ऐसी इच्छा जाग रही ।।
आज्ञा करो आप यदि तो हम, ऐसा करने को जाये ।
बौद्ध-विहाराचार्यो का कुछ, नाम ठाम भी बतलायें ।।
भय है वहां अमंगल का मैं, आज्ञा कैसे करू प्रदान ।
मंगलमय है नाम आपका, सकुशल लौटेगे ले ज्ञान ।।
अपने मेधावी शिष्यों का, आग्रह टाल नही पाये ।
आज्ञा देकर भेज दिए है, नाम ठाम सब समझाए ।।

छद्मवेषी-छात्र

छद्मवेष में चलते दुर्गम-जंगल नदियाँ करते पार ।
पहुँच गए है पता लगा कर, जहाँ बना था बौद्ध विहार ।।
वाक्-चातुर्य विनीत-रीति से, प्राप्त कर लिया वहां प्रवेश ।
चढते सबसे आगे बढते, जो मेधावी छात्र विशेष ।।
खाने-पीने-सोने रहने का, था उत्तम वहाँ प्रबंध ।
विषयों व्यसनों नई फैशनों की न किसी को अपनी गंध ।।
त्रुटियाँ देख प्रमाण शास्त्र की, करते गुप्तरीति से नोट ।
जिसकी प्रतिभा तीक्ष्ण नही हो, वह क्या समझ सकेगा खोट ।।

नियति का प्राबल्य

था अध्ययन पूर्ण होने को, चलने में कुछ दिन थे शेष।
नियति प्रबल होती है देखो, कैसा विकट उपजता क्लेश ॥
गुप्त रीति से लिखे रखे वे, पन्ने उड़कर बिखर गये।
तितर-बितर होगए सभी क्या, पता किधर के किधर गये ॥
जिनके हाथ लगे वे लेकर, पहुँचे प्राचार्यो के पास।
ऐसे छात्र कौन है इनमे, कैसे इस पर पडे प्रकाश ॥
ऐसा करने वालो को हम-नष्ट-भ्रष्ट कर डालेगे।
पता निकालेगे न अगर हम, तो वे हमको खा लेगे ॥

युक्ति सोची गई

जैन कौन है बौद्ध कौन है, कैसे पता लगाएँ हम।
निर्दोषी को दोषी दोषी-को निर्दोषी पाएँ हम ॥
सीढी पर रख दो प्रतिमाएँ, नीचे इन्हे उतारा जाय।
महावीर पर पैर रखे जो, उसे बौद्ध स्वीकारा जाय ॥

मरना मंजूर है

पडे सोच में दोनों भाई, मरता जीव एक ही बार।
बौद्ध मूर्त्ति पर पैर रखेंगे, चाहे यही हमें दे मार ॥
ऐसा करते हुए शीघ्र वे, सीढ़ी उतरे भाग पडे।
ये ही है ये ही हैं ऐसे, कहते शिक्षक जाग पडे ॥
दौड़ो पकड़ो, मारो-पीटो, जीवित इन्हे न जाने दो।
अपने किए हुए कर्मो का, महाकटुक फल पाने दो ॥
आगे आगे दोनों भाई, पीछे शत्रु अनेक लगे।
जिसे भागकर जाना है वो, बोलो कितनी दूर भगे ॥
पकड़ा गया हँस रास्ते मे, उसे वहीं पर डाला मार।
क्या न साम्प्रदायिकता का था, इनके सर-पर भूत सवार ॥

परमहंस नृप-शूरपाल की, सहायता से बच पाया।
गुरुजी लो पन्ने सम्भालो, हंस मरा, मैं ही आया।।
थका हुआ था गिरा भूमि पर, प्राण पखेरू वही उडे।
टूटी हुई उम्र दिल वापिस, नहीं कही पर सुने जुड़े।।

हरिभद्र का प्रकोप

शिष्य युगल की मृत्यु देखकर, कुपित बने हरिभद्र विशेष।
प्रबल कषायोदय के कारण, तप जाते है आत्म-प्रदेश।।
बौद्ध विहारान्तर्गत शिक्षक, छात्र सभी को देना भून।
जिनके नही चुने जा सकते, मर जाने पर अस्थि-प्रसून।।

आकाश में लाया गया

किया उपाश्रय बन्द भट्टियाँ, गई जलाईं बड़ी बडी।
तेल कड़ाहे चढा दिए है, मंत्र बोलते घड़ी घड़ी।।
आकर्षित होकर अध्यापक-छात्र सभी आ खडे हुए।
लाइन लगी चीलको जैसी, क्रमशः छोटे बड़े हुए।।
क्या होगा वे नही समझते, क्या होगा क्या जानें लोग।
किसके द्वारा किस विधि से यह, आयोजित है मंत्र-प्रयोग।।

क्रोध शांति का उपाय

तुरत याकिनी महत्तरा ने, जाना हत्याकांड बड़ा।
चम्मालीस चतुर्दश शत को, गगनांगण में किया खड़ा।।
आई, देखा, द्वार बंद है, बोली—खोलो दरवाजा।
अभी नही पीछे आने का, उत्तर तुरत मिला ताजा।।
अति आवश्यक काम अभी है, द्वार खोलिए आप अभी।
खुला द्वार गुरुजी कहते है, सार बोलिए आप अभी।।
हे गुरुदेव ! मरा पैरों के-नीचे दबकर मेढक एक।
प्रायश्चित्त दीजिए उसका, द्रव्य क्षेत्र आगमविधि देख।।

दोहा

उपालंभ देने लगे, सुनकर श्री हरिभद्र।
ध्यान रखो व्रत का सदा, करो जीव की कद्र ॥
बिना किए आलोचना, जो कर जाये काल।
आराधक का पद प्रवर, वह देता है टाल ॥
अमुक दड इसके लिए, करे आप स्वीकार।
पुनः भूल करना नही, रखना पूर्ण विचार ॥
जो फरमाया आपने, सब कुछ है स्वीकार।
इस पर कहने का मुझे, मिला स्वतः अधिकार ॥
इसका जो यह दंड है, तो इसका क्या दंड।
इन्हे भूनने का न क्या, होगा पाप प्रचंड ॥
तेल कड़ाहों मे अगर, इन्हें तलोगे आप।
तो न लगेगा आपको, क्या कोई भी पाप ॥
जान-वूझकर कर रहे, इनकी हत्या आप।
क्या होगा आचार्य के लिए पाप भी माफ ॥

आँखें खुल गईं

सुन कर लगे सोचने गुरुवर, गुरुणीजी सच कहती है।
इनके कहने और सोचने, मे गहराई रहती है ॥
सुफल क्षमा का कुफल क्रोध का, बहुत उचित बतलाती है।
शांति भाव के बिना न सीधी, बात समझ में आती है ॥

ग्रन्थ बनाये

उन सब को छोड़ा है वापिस, भेज दिया है अपने स्थान।
प्रायश्चित्त किया है अपने, संकल्पों के लिए महान ॥
ग्रन्थ बना डाले उतने ही, जितने थे वे शिक्षक-छात्र।
समराइच्च कहा नामक कृति, मानी जाती शम-रस पात्र ॥

न्याय-योग-टीका ग्रन्थों का, किया विपुलता में निर्माण।
प्रभावना करने वालों में श्री हरिभद्र सूरि थे प्राण॥
वि० सं० सात सौ सचा से है, वि० सं० आठ सौ सत्तावीस[1]।
इतिहासज्ञों ने माना है, समय आपका विश्वाबीस॥

कृति का सारांश

पुष्कर मुनिवर ने लिखा, यह सुन्दर वृत्तान्त।
करिए अपने आपको, आप समय पर शान्त॥
चाहे जो भी भूल हो, करें आप स्वीकार।
आराधक पद पाइये, अगर उतरना पार॥
अहंकार मत कीजिए, देख स्वयं का ज्ञान।
पड़े जगत में बहुत से, ज्ञानवान धनवान॥
शिक्षाएँ सारी सरस, लिए सभी के ग्राह्य।
अंतर के आधार पर, आकृति बनती बाह्य॥
रायचूर चौमास में, हुआ बहुत उपकार।
लिखने-पढ़ने का मिला, अवसर मुझे उदार॥

राधेश्याम

लिखा गया मेरे द्वारा जो, बहुत पसंद करेंगे लोग।
तो उत्तम कार्यो में होगा, उनका बहुत बड़ा सहयोग॥
मुझे अधिक लिखने की इससे, नई प्रेरणा होगी प्राप्त।
लेखक शिक्षक वाचक का क्या, होता देखा कार्य समाप्त॥

☐

---

१ वि० स० ७४७ से ८२७ तक

21

आचार्य श्री मानतुंगसूरि

राधेश्याम

यह चमत्कार है

चमत्कार है ब्रह्मचर्य तप, चमत्कार है व्रत संयम।
चमत्कार दिखलाने वाला, चमत्कार को करता कम॥
चमत्कार दिख जाया करता, दिखलाने का करो न मन।
विद्युत् चमत्कार दिखलाकर, शीघ्र छुपाती अपना तन॥
चमत्कार के युग की घटना, तुम्हें सुनाई जायेगी।
चमत्कार कैसा होता है, बात समझ में आयेगी॥

वाराणसी की राज सभा

हर्षदेव की राज सभा थी, विद्वानों से भरी हुई।
ज्ञान - विवेक-हीन की आत्मा, रहती प्रतिपल मरी हुई॥
हाथ-पैर जुड़ गए बाण के, जो कब से थे कटे हुए।
यथा मोम से जुड़ जाते हैं, हाथ पाँव जो फटे हुए॥
कुष्ट रोग हट गया पुष्ट हो—गया न क्या कविराज मयूर।
चमत्कार की महिमा से था, हर्षदेव का युग भरपूर॥
वसुधाधिप के मुख से सहसा, प्रगट होगई ऐसी बात।
विद्या-ज्ञान-चमत्कार का, धनी मात्र द्विजवर्ग लखात॥

और बहुत हैं

सचिव नृपति का जिनानुयायी, बोला ऐसी क्या है बात।
सभी जातियों वर्गों में है, सिद्धि रिद्धिवाले साक्षात्॥

अभी विराज रहे पुर बाहर, मानतुंग आचार्य-प्रवर।
विद्या-ज्ञान-चमत्कार के, माने जाते एक शिखर ॥
जैन श्रामणी दीक्षा ली थी, जिनके मात-पिता जी ने।
कहते जीयो आप शांति से, दो इस दुनिया को जीने ॥
बड़ी ऋद्धियां बड़ी सिद्धियाँ, बड़ी लब्धियाँ जिनको प्राप्त।
ऊँचे तप-जप-ज्ञान-ध्यान में, सभी शक्तियाँ रहती व्याप्त ॥
मंत्री से नृप हर्षदेव ने, कहा उन्हें दो आमंत्रण।
कल ही राजसभा मे आएं, दिखलाएँ शुभ ज्योतिःकण ॥

चमत्कार दिखलाये

मंत्री ने जा गुरु-चरणों में, किया निवेदन आने का।
तत्त्व समझने वालों को, क्या, काम भला समझाने का ॥
गुरुजी आये राजसभा में, सब ने नमन किया झुककर।
कोई पहले ही कर लेता, कोई कर लेता रुककर ॥
चमत्कार दिखलाएँ अपना, राजा ने यों स्पष्ट कहा।
जो ऐसा करते है उनको, प्रभु ने हमने भ्रष्ट कहा ॥
चमत्कार दिखलाना ही तो, श्रमणधर्म के है विपरीत।
इतना कहकर मौन होगए, पालन करते रीत पुनीत ॥

बंधवा डाला

एक बार दो बार तीसरी बार प्रार्थना नृप ने की।
गुरुजी चमत्कार देखेगे, समझो हमने भी हठली ॥
जोड़ा रुख न मौनव्रत तोड़ा, बैठे रहे लगाकर ध्यान।
मानों नृप की किसी बात को, ग्रहण नही कर पाते कान ॥
मन ही मन में क्रोधित था, नृप आखिर क्रोध निकाला है।
चम्मालीस श्रृंखलाओं से कसकर बंधवा डाला है ॥

कोटड़ियों मे बंद कराया ताले पर ताले डाले।
किसकी शक्ति बीच में बोले, और सूरि को छुड़वाले॥

चमत्कार जो होगा इनमें, तो बाहर आजायेंगे।
बधन सभी स्वत. टूटेगे, हम फिर शीश नवाएँगे॥

चमत्कार फूट पड़ा

सूरि सोचने लगे परीषह, आज हुआ उत्पन्न महान।
लीन बने श्री जिन स्तवना में, अस्फुट स्वर सुनते भगवान॥

आत्मा मे परमात्मा मे बस, किंचित् अंतर रहा नहीं।
स्रोत शक्ति का भक्ति मार्ग को, छोड़ कभी भी बहा नहीं॥

आदिनाथ जिन की स्तवना मे, श्लोक बोलते जाते है।
वे प्रत्येक श्लोक ही ताले, त्वरित खोलते जाते हैं॥

टूटे बधन टूटे ताले, कोटड़ियों के खुले कपाट।
चमत्कार का पढ़ा सुना है, सारी राज सभा ने पाठ॥

रुका न राजा शीश झुकाकर, गिरा सूरि के चरणों में।
सोने मे आभरण भरे है, भरा स्वर्ण आभरणों में॥

आज भी प्रसिद्ध है

सूरिप्रवर श्री मानतुंग-कृत, भक्तामर है आज प्रसिद्ध।
सिद्ध चमत्कारी पुरुषों की, बाते हमें सुनाते वृद्ध॥

प्रचलित स्तोत्र आज भी देखो, पढ़ते इसे प्रेम से लोग।
चमत्कार इसका वे पाते, जो करते विधि सहित प्रयोग॥

अन्तिम सार

जप से, तप से, व्रत सयम से, स्वत. सिद्धियाँ मिलती है।
ऋतु आने पर वन उपवन में, जैसे कलियाँ खिलती है॥

पुष्कर चमत्कार मे अपना, सयम-समय नही खोये।
भक्ति शक्ति धर्मानुरक्ति के, बीज बहुत ऊंडे बोये॥

22

सम्राट् सम्प्रति

[यह भूप भरथरी, महल बीच में आनी।]

हुए जैनधर्म के प्रबल प्रचारक भारी।
श्री सम्प्रति नृप की सुनो कथा सुखकारी···॥ टेर॥

इक पुर मे भिक्षुक भीख हित नित्य फिरता।
फिर मांग मांग कर उदर स्वय का भरता।
कुछ मिला नही, इक वक्त भूख से मरता।
दिन निकले ऐसे तीन दु.ख अति धरता।
होती है अपनी जान - सभी को प्यारी···श्री ॥१॥

इतने मे मुनिवर एक वही पर आये,
जिनके दर्शन से श्रावक जन हरषाये।
वे श्रमणोपासक श्रेष्ठ भावना भाये,
मुनि अशनपान कुछ एषणीक भाये।
क्यो खाये पहले आप स्वय व्रतधारी···श्री ॥२॥

[दूर कोई गाये]

श्रावको की अर्ज

आइये पधारिये, गुरुवर तारिये।
मुनि गुणधारी हो, विनति हमारी हो···॥ टेर॥
आप तरण-तारण हो, भवदु.ख वारण हो।
महिमा अपारी हो, विनति हमारी हो···॥

आप सन्त भगवन्न, कर्मों का करते अन्त ।
समता भण्डारी हो, विनति हमारी हो ॥
मोदकों से भरा थाल, लाभ कुछ दो दयाल ! ।
अर्ज अवधारी हो, विनति हमारी हो···॥

राधेश्याम

भिखारी का विनय

भूखा हूँ मैं तीन दिनों से, लड्डू का टुकड़ा दो एक ।
ओ गुणधारी सेठ महाजन, दया करो लो मुझको देख ॥
आप अन्नदाता हो प्यारे, मात-पिता हो मेरे आप ।
मेरी भूख मिटा देने में, नहीं लगेगा कोई पाप ॥
सन्तो को दुनिया देती है, लड्डू देने आप लगे ।
लड्डू मुझे दीजिए जिससे, मेरे तन की भूख भगे ॥
तुम कहते हो ले लो भगवन्, ना ना कहते सन्त महान ।
हाँ हाँ मैं कहता हूं देकर, देखो दीन दुःखी को दान ॥
"त्यागे जिसके आगे" वाली, झूठी नही कहावत है ।
माँग माँग कर लेने वाला, रहता नित्य यथावत है ॥
अगर न आप मुझे दोगे तो, मैं मुनियों से ले लूंगा ।
ये जब भी बाहर आयेंगे, तब इनसे मै माँगूंगा ॥

मुनि और भिक्षुक

मुनिजन ले आहार भवन से, तत्क्षण बाहर आते है ।
श्रावक पाँच-सात पांवों तक, मुनियों को पहुँचाते है ॥
भगवन् बहुत कृपा की हम पर, दिया दान का लाभ हमे ।
सयम के शुभ आराधन मे, हम तन मन से शीघ्र रमें ॥

तीन दिन हुए कुछ, खाने को मिला है नहीं ।
किसके पास जावूं पन्थ, जाने को मिला है नहीं ।।
आप हो दयालु देव सुध - बुध लीजिए···।।

आचार्य जी का उत्तर

लड्डू लेना हो तो भैय्या, सन्त बन जाइये ।
देर न लगाइये जी, देर न लगाइये ।।ठेर।।
लड्डू हम देते उसे, हम जैसा होता जो ।
यदि दे गृहस्थ को तो, कल्पभंग होता हो ।।
अतः दोष-पात्र हमें मत न बनाइये...देर...।
गुरुदेव मुझे यह, शर्त स्वीकार है ।
देदो संयमभार है, देदो संयमभार है ।। टेर।।
दीक्षा देदो, शिक्षा देदो, देरी का क्या काम है ।
लड्डू तो मिलेगे और, मिलेगा आराम है ।।
मरता क्या न करता ? सब,
कुछ करने को तैयार है दे दो...।

राधेश्याम

भिक्षुक की दीक्षा

गुरु ने दीक्षाविधि करवाकर, दिया संत का वेष इसे ।
मुनिजन वन्द्य हुआ करते है, है इसमें आपत्ति किसे ।।
श्रमणवेष की महिमा से ही, पूर्ण प्रभावित बनता मन ।
भाव श्रमण बन जाने वाला, माना जाता मार्ग कठिन ।।
नवदीक्षित मुनि के सम्मुख अब, रखा पड़ा है मोदक-पात्र ।
जितने भाये उतने खाओ, सोचो अपनी इच्छा-मात्र ।।
तीन दिनों के रिक्तोदर पर, पड़ा मोदकों का अतिभार ।
अति आहार जीर्ण कब होता, करता भोक्ता को बीमार ।।

नवदीक्षित मुनि उदरशूल से, पीड़ित हुए उसी ही क्षण ।
क्षण मे व्रण न भरा जा सकता, आवश्यक है संरक्षण ॥

मुनिजी की मनोभावना

चिन्तन उठने लगा चित्त मे, साधुपने में सुख भारी ।
मुनिपद का वंदन करते है, श्री धी वाले नर-नारी ॥
मुनि-सेवा मे तत्पर रहते, सेठ लोग भी खड़े-खडे ।
वदन अभिनन्दन करते है, नरपति सुरपति बड़े-वड़े ॥
मुझे लड्डुओ की लिप्सा ने, दिलवाई है यह दीक्षा ।
पा न सका मैं श्री सद्गुरु से, धर्ममयी पावन शिक्षा ॥
कल सूखे टुकड़े पाने को, फिरता था मैं घर-घर-द्वार ।
श्रमण-भाव ने किया देख लो, एक भिखारी का उद्धार ॥
दुत्कारों के स्थानों ने ही, सत्कारों का स्थान लिया ।
हीन समझते जो कल मुझको, पूज्य उन्ही ने मान लिया ॥

स्वर्गवास और समाधि

सेवा-भावी श्रमण पास मे, णमोक्कार सुनवाते हैं ।
अरिहंताणं शरणं, शरण सिद्धाण पद गाते है ॥
शुभ भावों मे नव दीक्षित मुनि, कर जाते है काल सुनो ।
सुनने वालो ध्यान लगाकर, अब आगे का हाल सुनो ॥

मौर्यवंश का इतिहास

चन्द्रगुप्त सम्राट् श्रेष्ठतम, मौर्य वश का उद्धारक ।
श्रुतधारी श्री भद्रबाहु का, श्रावक था आज्ञाकारक ॥
नगर पाटलीपुत्र मनोहर, करता भारत पर शासन ।
यशोदुन्दुभि बजती जिसकी, तपता इन्द्र सदृश आसन ॥

दोहा

चन्द्रगुप्त के पुत्र का, बिन्दुसार शुभनाम ।
न्याय नीति से राज्य के, जो करता शुभ काम ॥

बिन्दुसार के पुत्र का, था प्रिय नाम अशोक।
भारत के इतिहास से, परिचित विद्वल्लोक॥
बौद्धधर्म का था किया, इसने बहुत प्रचार।
शिला लेख इस तथ्य के, बहुत स्पष्ट आधार॥
उसकी थी दो रानियाँ, गई पितृ-गृह एक।
पटरानी ने पुत्र को, दिया जन्म सविवेक॥
रखा गया है ठाठ से, सुत का नाम कुणाल।
लगता है सुत के बिना, स्त्री-जीवन जंजाल॥
आठ वर्ष का सुत हुआ, लिखा पिता ने पत्र।
सकुशल तुम होगी वहाँ, सकुशल है हम अत्र॥

राधेश्याम

एक समाचार

"अधीयतां पुत्रः" ऐसा था, रक्त चिन्हित आदेश।
साधारण सन्देशों के सह, रहते है सन्देश-विशेष॥
सौतेली मां ने ले उस पर, अनुस्वार का भार दिया।
सौतेली माताओं ने कब, इस दुनिया को प्यार दिया॥
पत्र बन्द कर दिया उसे फिर, चला पत्रवाहक लेकर।
बना पत्रवाहक अपराधी, पत्र दूसरे को देकर॥
पहुँचा पत्र पढ़ा रानी ने, पाया मन आश्चर्य महान।
सुत को अन्धा कर देने का, किया गया कैसे फरमान॥
बोला पुत्र-पिता की आज्ञा, टाल न सकता पुत्र विनीत।
आज्ञा परमो धर्मः की हम, सदा निभाते आये रीत॥
तप्त शलाकाओं से मैं खुद, नेत्र ज्योति को नष्ट करूँ।
किसी दूसरे को अपने से, नही कभी भी कष्ट करूँ॥

अन्धा बना कुणाल आज से, फैला समाचार सर्वत्र ।
चिन्तित नृपति अशोक सोचता, किसने खोला मेरा पत्र ॥
अन्धे को सिंहासन देना, परम्परा को मान्य नहीं ।
केवल पटधर सुत होने का, होता कुछ प्राधान्य नही ॥

गायक कुणाल

एक गाँव दे करके इसको, जैसे तैसे तुष्ट किया ।
भावी भावों को घटना ने, पूर्णतया परिपुष्ट किया ॥
बना कुशल संगीत कला में, गायक एक कुणाल महान ।
उद्यम और लगन के द्वारा, नर ले सकता कोई ज्ञान ॥
अन्ध कुणाल बजाता गाता जाता आता देश-विदेश ।
गीत कला मे होते ही है नेत्र-हीन नर कुशल विशेष ॥

अशोक से पास

पहुंचा राज सभा में गायन, करता है अब आप कुणाल ।
सुनती सभा शोक से सारी, सुनते साथ अशोक नृपाल ॥
स्वर लहरी ने नृप को मोहा, माँग माँग बोला नरवर ।
गीत कला के माध्यम से ही, इसका दिया गया उत्तर ॥
परिचय दिया स्वयं का सारा, बिन्दुसार का मै पोता ।
पुत्र अशोक नृपति का मैं हूं, मै ही तो राजा होता ॥
अब मैं केवल एक काकिणी, माँग रहा हूँ प्रभुवर से ।
वरसे अगर घनाघन तब क्या, बेचारा चातक तरसे ॥
कहा किसी ने राज्य माँगता, इसीलिए यह आया है ।
अन्धा कैसे राज्य करेगा, नृप ने प्रश्न उठाया है ॥

मै नहीं, मेरा बेटा

पुत्र एक है मेरे राजन् ! "कदा सुतः सञ्जातः" रे ।
"सम्प्रति जात." इसीलिए यह, राज्य भार अब उसको दे ॥

उसे बुलाकर नृप ने उसका, सम्प्रति नाम निकाला है।
देख पुत्र मुख सुख का अनुभव, किया नृपति ने आला है॥
राज्यासन पर उसे बिठाया, करता सम्प्रति नृप शासन।
शासन बड़ा प्रभावी होता, निर्मल हो यदि सिहासन॥

[मूल की]

जीवन का नया मोड़

अब आचार्य सुहस्ति वहाँ पउधारे,
थे शिष्य अनेकों साथ बड़े गुणवारे।
निकला भव्य जुलूस शहर में सारे॥
लगा रहे है लोग धर्म के नारे।
गोखे मे से नृपति रहा है निहारी॥ श्री॥

[दूर कोई गाये]

सम्प्रति विचारता, उपशम मन धारता।
गुरु को निहारी हो, ये तो गुणधारी हो॥टेर॥
श्वेत वस्त्र, कर-पात्र, काख में है गुच्छा मात्र।
पैदल विहारी हो, ये तो गुणधारी हो...॥
स्मृतियाँ अतीत की, उपशम के रीत की।
आई ततकारी हो, ये तो गुणधारी हो ...॥
पूर्वजन्म देख पाया, जाति स्मरण ज्ञान आया।
इचरजकारी हो, ये तो गुणधारी हो ...॥
ये तो मेरे उपकारी, इनसे ही दीक्षा धारी।
दिया भव तारी हो, ये तो गुणधारी हो...॥
महलो मे से नीचे आया, चरणों में सिर नवाया।
आप उपकारी हो, ये तो गुणधारी हो ..॥

क्या मुझे पहचाना जी, साफ फरमाना जी ।
गुरु दयाधारी हो, ये तो गुणधारी हो ...॥

गुरुजी का उत्तर

गुरुवर वोलते, ज्ञानचक्षु खोलते ।
तू तो भूप भारी हो, जाने नर-नारी हो ॥टेक॥
तेरा नाम सम्प्रति, गुणगण धाम अति ।
जगत मझारी हो, जाने नरनारी हो...॥

दोहा

यह नहीं वह

पूर्वजन्म पहचानिये, ओ गुरुवर गुणवान ।
क्योंकि हुई, होती नही, ज्ञान बिना पहचान ॥

राधेश्याम

जान लिया ज्ञानोपयोग से, पूर्वजन्म श्री नरपति का ।
जिसने मेरे से ली दीक्षा, भिक्षुक जो भूखा अति था ॥
राजा बोला कृपा आपकी, जो मुझ पर न हुई होती ।
तो क्या मूल्यवान बन पाता, बिना स्वातिवाला मोती ॥
ऐसी कृपा करो अब भी मैं, तरजावू जिससे भव पार ।
नही भूल सकता मैं भगवन, किया आपने जो उपकार ॥

ऐसा करो

गुरु बोले-दीक्षा के लायक, पका नही है तेरा काल ।
जैनधर्म की सेवा वाले, करते रहना कार्य-विशाल ॥
जैन धर्मशालाएँ खोलो, बड़ी दानशालाएँ भी ।
जिससे शोभित हो सकती है, सम्प्रति नृप की राज्य श्री ॥
तन-मन-धन से सम्प्रति नृप ने, जैन धर्म का किया प्रचार ।
पड़ह अमारि बजाये जिससे, हुआ अहिंसा का विस्तार ॥

चार तीर्थ की सेवाएँ कर, किया स्वय को परम कृतार्थ ।
इससे वढ़कर मानव भव का, क्या हो सकता है परमार्थ ॥

कथा पूर्तिकाल

दो हजार उनतीस जोधपुर, चातुर्मास सफल भारी ।
श्री तारक गुरु कृपया लगती, पुष्कर की वाणी प्यारी ॥
मिले जहाँ से भी हम लेले, धर्म-भावना का सम्बन्ध ।
नही साम्प्रदायिकता की कुछ जिसमें पाई जाये गंध ॥

●

23

श्री रत्नाकर सूरि

राधेश्याम

श्री रत्नाकरसूरि का जीवन, वदला सुनकर गाथा एक ।
पता नही होता किस पल मे, हो जायेगा सत्य विवेक ॥
मेधा शक्ति प्रखर थी जिनकी, देते तर्क अकाट्य महान ।
इसीलिए उनको मिलता था, चर्चाओं में अग्रिम स्थान ॥
विप्र पण्डितो ने मानी थी, इनके सम्मुख अपनी हार ।
सत्कृत और समादृत करता, इन्हें नृपतियों का दरवार ॥
डुलते चंवर, छत्र सिर धरते, शिविका में चढकर आते ।
नियत समय पर राजसभा मे, सम्मानित हो नित जाते ॥
पण्डित प्रवर कर्मचारी गण, जय जय स्वर गुंजाते साथ ।
अहंभाव उपजाने वाली, होती सम्मानों की बात ॥
जानबूझ कर जिनशासन से, करता कोई द्वेष नही ।
श्री रत्नाकरसूरि के सम्मुख, आ सकता वह पेश नहीं ॥
जिनशासन की कीर्तिपताका, लहराती थी नभ तल में ।
जगती के बल निर्बल होकर, मिले सकल विद्या बल मे ॥

श्रावक का आश्चर्य

श्रावक एक कुण्डलिक आया, जो करता घृत का व्यापार ।
श्री रत्नाकर सूरि को देखा, जाते हुए नृपति दरबार ॥
ये हीरे, ये रत्न, स्वर्ण से, मण्डित शिविका चढ़ने को ।
शाही ठाट कहाँ से देगे, साधु मार्ग मे बढ़ने को ॥

क्या ये सारा कार्य जैन के, आचार्यों के योग्य कहो।
त्यागा जग का सकल परिग्रह, कैसे वो फिर योग्य अहो॥
इनको कैसे कहा जाय ? मै, नही संघपति व्यक्ति महान।
फिर भी ऐसे बोलूं जिससे, बदले महापुरुष का ध्यान॥
हाथ जोड़कर सम्मुख जाकर, स्तवना दाता भरकर मोद।
स्तुत्य उपाय वही होता जो, उपजाने सकता हो बोध॥

गाथा

गोयम - सोहम्म - जम्बूपभवो, सिज्जंभवो अ आयरिया।
अन्नेवि जुगप्पहाणा, तुह दिठ्ठे सव्वे वि ते दिठ्ठा॥

अर्थ :

गौतम, आर्य-सुधर्मा, जम्बू, प्रभव, शय्यंभव वर आचार्य।
देखा एक आपको अब क्या, उन्हे देखना क्या अनिवार्य॥

चिन्तन का चिराग

सुनकर स्तुति श्रावक के मुख से, गुरुजी का मुख म्लान हुआ।
बडे पूर्वजों की उपमा से, अपने का अनुमान हुआ॥
राजहंस कौव्वे को कहना, कौव्वे का करना सम्मान।
कौव्वे की स्तुति से हो जाता, क्या न सितच्छद का अपमान॥
वे गणधर, वे सूरिप्रवर, वे, युगप्रधान वे महासमर्थ।
और कहां मै अधम व्यक्ति जो, रखने लगा पास में अर्थ॥
कहा स्पष्ट श्रावक से ऐसे, साम्य नहीं उनका मेरा।
मेरा यह चिन्तन है सम्भव, सत्य बने कहना तेरा॥
श्रावक ने सोचा इनका तो, हो सकता है शीघ्र सुधार।
लाये नही उधार कहीं से, है इनके ही विमल-विचार॥
जान लिया अनुमान ज्ञान से, सूरि प्रवर है जगे हुए।
झड़काने से झड़ जाऐंगे, ये कुछ रजकण लगे हुए॥

नित्य नया अर्थ

गया दूसरे ही दिन श्रावक, प्रवचन सुनने को गुरु पास ।
क्यो न पास दिखता हो लेकिन, वहुत दूर है नीलाकाश ॥
आगम का गम्भीर विवेचन, सुनकर श्रावक लीन हुआ ।
ज्ञान-सिन्धु में रहने वाला, मानो नूतन मीन हुआ ॥
इस गाथा का अर्थ बता दो, लगा पूछने ऐसे आप ।
सत्य प्रश्नकर्ता के मन मे, छुपा नही रहता है पाप ॥
गुरु ने तत्क्षण उस गाथा का, स्पष्ट अर्थ समझाया है ।
श्रावक ने जो कुछ चाहा था, हाथ नही वह आया है ॥
गया दूसरे दिन फिर पूछा, नया अर्थ फिर बतलाया ।
रहा पूछता प्रतिदिन ऐसे, किन्तु न अन्त अभी पाया ॥

श्रावक का विनय

बीत गये षट्मास आज यों, श्रावक बोला बन गम्भीर ।
मूल अर्थ सुनने की इच्छा, रही अभी भी दिल को चीर ॥
घृत-विक्रय से जो धन पाया, खाया अब जाना है घर ।
अर्थ यथार्थ सुना दो गुरुवर, आप बडे है आगमधर ॥
कहा सूरि ने कल मे तुमको, सत्य अर्थ बतलावूँगा ।
सोचा सच्चे श्रावक को मैं, कितने दिन लटकावूँगा ॥

परिवर्तन का क्षण

परिग्रही मैं बना हुआ हूं, भूल गया मै साध्वाचार ।
राज्याश्रय, सम्मान और सुख, करने देते नहीं विहार ॥
पश्चात्ताप किया जीवन पर, पूर्ण परिग्रह को त्यागा ।
छिपा हुआ दिल के कोने में, वर वैराग्य पुनः जागा ॥
रत्नाकर पच्चीसी का बस, किया उसी दिन ही निर्माण ।
है प्रत्येक पद्य ही जिसके, जागृति - पूर्ण प्रेरणा-प्राण ॥

रत्नाकर पंचविंशति

श्रेय: श्रियां मंगलकेलिसद्म ! नरेन्द्र देवेन्द्र नताङ्घ्रिपद्म ! ।
सर्वज्ञ सर्वातिशयप्रधान ! चिरंजय ज्ञान कलानिधान ! ॥
वैराग्यरंग: परवञ्चनाय, धर्मोपदेशो जनरञ्जनाय ।
वादाय विद्याध्ययनं च मेऽभूत्, कथं ब्रुवे हास्यकरं स्वमीश ! ॥

राधेश्याम

श्रावक आया सुना अर्थ सच, बोला मै हूँ आज प्रसन्न ।
यही अर्थ सुनने की इच्छा, इतने दिन तक थी प्रच्छन्न ॥
भाव सहित कर वन्दन श्रावक, चला गया है अपने घर ।
श्री रत्नाकर सूरि के मन पर, देखो कितना पड़ा असर ॥

युग और दिशा

जीवन में परिवर्तन लाना, सरल नही माना है कार्य ।
भूल समझ लेने पर भी क्या, उसे कहा जाता स्वीकार्य ॥
भूल सिद्ध करने की कोशिश, होती यहाँ हजारों बार ।
एक भूल पर भूल हजारों, करने को रहते तैयार ॥
भूल सुधार सरलता से कर, नर बन जाता शुद्ध विशेष ।
भूल सुधारी जाए अपनी, इतना ही सुन ले उपदेश ॥

पूर्ति और स्थान

बम्बई कांदावाड़ी में है, अठावीस का चातुर्मास ।
दो हजार सम्वत श्रम आया, पाया मन ने परमोल्लास ॥
तारक गुरु का शिष्य शुभंकर, पुष्कर मुनि कहता है स्पष्ट ।
केवल अपनी भूलो को ही, करे समझने का कुछ कष्ट ॥

★

24

सूरिसम्राट् श्री हीरविजयजी

राधेश्याम

तप.महिमा

चार मोक्ष-मार्गो मे तप का, कितना बड़ा महत्त्व सुनो।
चारों मे से जिसके मन को, जो भाये वह क्यो न चुनो॥
तप की बहुविधता से देखो, बहुविध शुद्धि हुआ करती।
तप की शक्ति व्यक्ति के मन में, धर्म भावनाएँ भरती॥
पूर्वोपार्जित कर्मो का क्षय, करने में तप कुशल महान।
क्या न अतप्त स्वर्ण मे रहता, मिट्टी का मिश्रण असमान॥
हुए तपस्वी यहाँ अनेकों, जिनका है इतिहास बड़ा।
इतिहासो के अवलोकन से, मन पर धर्म-प्रकाश पड़ा॥
अन्तराय तोड़ी हो जिसने, वही तपस्या कर पाता।
नमोक्कारसी करने मे भी, श्रेणिक नरवर डर जाता॥

अकबर का प्रश्न

बादशाह अकबर खुद बैठे, महल झरोखे मे इक दिन।
बहुत प्रसन्नमना करते थे, अपने पुर का अवलोकन॥
देखा, एक जुलूस आ रहा, जिसमें सभी प्रतिष्ठित लोग।
लोग जुलूस निकाला करते, जब हो उत्सव का संयोग॥
किसकी यह बारात आ रही, जिसने ऐसा रूप लिया।
पण्डित टोडरमल जी से यों, बादशाह ने प्रश्न किया॥

चम्पा बहन है

पण्डित जी ने कहा नही यह, कोई भी बारात चढी ।
जैन श्राविका चम्पाजी की, तप पूर्ति है आज बड़ी ॥
षट्मासी तप करने वाली, चम्पा की महिमा भारी ।
प्रभावना श्री जिनशासन की, अतः आ रही असवारी ॥
बादशाह बोला क्या वह खुद, इस यात्रा मे शामिल है ?
कैसी है वह उसे बुलाये, देखे यूँ कहता दिल है ॥
महलों के सन्निकट आ गया, इतने ही मे वही जुलूस ।
चम्पा को बुलवा कर अकबर, बहुत हर्ष करता महसूस ॥

प्रश्न परम्परा

बोला बहन ! बताओ कैसे, तूने ये उपवास किये ।
क्या खाया क्या पीया जीया, कैसे फिर विश्वास लिये ॥

तप विधि और गुरु

बोली बहन नही कुछ खाया, पीया केवल पानी गर्म ।
उपवासों की यह विधि हमको, सिखलाता आया जिन धर्म ॥
भौतिक अभिलाषा से ऊपर, डट कर ये उपवास किये ।
जीती रही शांतिमय जीवन, आत्मा का विश्वास लिये ॥
बादशाह ने कहा महीने तक, जो हम रोजा करते हैं ।
दिन मे नही किन्तु वे निशि में, पेट पूर्णतः भरते है ॥
षट्मासी तप करके तूने, स्थापित एक कमाल किया ।
तेरे तप ने मेरे मन पर, असर अनूठा डाल दिया ॥
बोली बहन शक्ति क्या मेरी, कृपा सकल है गुरुवर की ।
शांतिदायिनी वाणी हमको, वही सुनाते जिनवर की ॥
नाम बताओ उन सद्गुरु का, उन्हे यहाँ बुलवावूँगा ।
उनके पावन दर्शन पाकर, प्रसन्नता मैं पावूँगा ॥

पुर गन्धार प्रान्त गुर्जर में, अभी विराजित हैं गुरुवर ।
पच महाव्रतधारी प्यारे, हीरविजयजी नाम प्रखर ॥

निमन्त्रण और आगमन

अच्छा तुम अब जा सकती हो, लिखता हूँ मैं उनको पत्र ।
उनके आने से फैलेगी, खुशियाँ यहाँ और सर्वत्र ॥
मिला निमन्त्रण-पत्र सूरि को, किया सूरि जी ने प्रस्थान ।
यह सम्मान जैनशासन का, नही अकेलों का सम्मान ॥
ग्रीष्म काल का ज्येष्ठ मास था, सोलह सौ उनताली साल ।
कर विहार पहुँचे है गुरुवर, भव जल तारक दीनदयाल ॥
अबुलफजल ने स्वागत करके, पूछे प्रश्न अनेक जटिल ।
उचित समाधानों से होता, सदा प्रसन्न सभी का दिल ॥

चमत्कार और जीव दया

बादशाह के आग्रह पर वे, गये जहाँ पर था दरवार ।
वहाँ गलीचे बिछे हुए थे, खडा दूर ही यति-परिवार ॥
बादशाह बोला गुरुजी से, आगे आप पधारो जी ।
नही गलीचो पर हम चलते, सत्य शर्त स्वीकारो जी ॥
सम्भव है इनके नीचे हो, कही चीटियाँ कलबलती ।
मर जायेगी वे वेचारी, इधर - उधर हिलती - चलती ॥
जीव-दया न रहेगी हम में, कारण है इसका यह स्पष्ट ।
राजमहल मे कहां चीटियां ? देखे उठा, करे कुछ कष्ट ॥
देखा उठा गलीचों को तब, वहां चींटियाँ चलती थी ।
अपना सुख आयुष्य लिए वे, बड़े प्रेम से पलती थी ॥
श्रमणो के आचारो पर, तब बादशाह भी विस्मित है ।
दृष्टि असीमित सर्वज्ञों की, और हमारी सीमित है ॥

भेंट लीजिए

उठा पुस्तकें तब गुरुवर को, देने लगा बड़ा उपहार।
गुरुजी बोले—नही चाहिए, कौन उठाये इनका भार॥
हमें जरूरत होती है तब, लाते है भण्डारों से।
दूर परिग्रह से रहना ही, लगता उचित विचारों से॥
पूर्ण प्रभावित बादशाह ने, किये अमारी के फरमान।
पर्यूषण ओ अन्य चार दिन, दिया अहिंसा को सम्मान॥
और जगद्गुरु का पद देकर, बादशाह खुश होता है।
गुणी गुणज्ञों की यह चर्चा, कण वर्जित तुस होता है॥
बड़े प्रभावक हीर सूरि का, लिखा एक यह भव्य प्रसग।
तारक गुरु की दया दृष्टि से, पुष्कर लगा धर्म का रंग॥

25

कवि धनपाल की सेवा

राधेश्याम

बावन लख मालव का मालिक, भोजभूप अति भारी था।
महानयज्ञ गुणज्ञ विज्ञवर, सकल प्रजा हितकारी था॥
विद्वानों को सत्कृत करता, और स्वय भी था विद्वान।
शासन की भाषा थी सस्कृत, संस्कृति पाती थी सम्मान॥
भोज सभा का भूषण, कविकुल मंडन श्री धनपाल महान।
जो थे जैनधर्म के द्वेषी, जिसका कारण था अज्ञान॥

धर्म में बाधाएँ

धारा में श्रमणों का आना - जाना भी अति कठिन बना।
उपाश्रयों मे आगम-वाचन, किया गया था सख्त मना॥
राज्याश्रय से रहित धर्म का, पलना दुष्कर हो जाता।
साधारण जनवर्ग धर्म का, लाभ नही कुछ ले पाता॥
इसके लिए निमित्त बना था, कविवर एक स्वय धनपाल।
कवि की इच्छाओं को नरपति, भोज नही सकते थे टाल॥

परिवर्तन का कारण

धन्यपाल के ज्येष्ठ सहोदर, ने जैनेन्द्री दीक्षा ली।
शासन की सेवा करने की, श्री सद्गुरु से शिक्षा ली॥
शोभन मुनिवर नाम उन्ही का, बना आगमन धारा मे।
छोटा भाई धन्यपाल तो फंसा मोह की कारा मे॥

ज्येष्ठ सहोदर शोभन मुनिवर, आये तब आया धनपाल ।
भले विचार नही मिलते हों, मिलता है भ्रातृत्व विशाल ।।
दर्शन प्रवचन श्रवण मनन कर, तत्त्वों का अभ्यास किया ।
सत्य अहिंसा अनेकान्त पर, आत्मा से विश्वास किया ।।
प्रतिभा से प्रतिपूर्ण स्वयं थे, छूट गया मिथ्यात्व सकल ।
आगमानुसारी ग्रन्थों का, प्रणयन नव्य किया अविकल ।।

जैन धर्म की गूँज

भोज सभा में जैन धर्म की ऊँची अधिक उठी आवाज ।
श्री धनपाल कवीश्वर का स्वर, सादर सकल समाज ।।
दया धर्म का सूक्ष्म विवेचन, नही जैन सम अन्य कही ।
सत्य अहिंसा अनेकान्त की, व्याख्याएँ है विशद यही ।।

भोज द्वारा परीक्षण

श्रद्धा अडिग देख कविवर की, नृपति भोज ने किया सवाल ।
कहो आज सर्वज्ञ कहाँ है ? और कहाँ है वैसा काल ? ।।
अनेकान्त की परम स्थापना, करता तू तर्कों द्वारा ।
तेरे तर्क जाल के सम्मुख, मृग-मिथ्यात्व सदा हारा ।।
पर बतलाओ ग्रन्थ कौनसा, जिसको मानें आज प्रमाण ।
कवि बोला-"आर्हत चूडामणि" जिसमें सब विषयों का ज्ञान ।।
किया भोज ने प्रश्न पुनः इक, द्वार तीन इस मंडप के ।
द्वार कौन से मैं निकलूगा, बतलादे लिखकर चुपके ।।
कवि ने उत्तर लिखा पत्र पर, रखा अलग उसको कर बन्द ।
द्वार नया बनवा कर निकले, भोज भूप मन धर आनन्द ।।
बन्द पत्र खोला तो पाया, अपना उत्तर पूर्ण सही ।
"आर्हत् चूड़ामणि" यह पुस्तक, किस विधि से सम्पूर्ण नही ।।

26

नियम बदल डाला

दोहा

आपकी तैयारी

जो धन होता पाप का, वह होता अग्राह्य ।
इसे समझने के लिए, स्थितियाँ ढूँढ़ें बाह्य ।।
उचित नहीं अनुचित नही, जो न मानता धर्म ।
धर्म-भावना के बिना, कब बनते शुभ कर्म ।।
किसी अन्य के कष्ट में, जो लेता है भाग ।
उस नर ने कर ही दिया, कठोरता का त्याग ।।
आश्वासन-तन-मन-वचन-धन-जन से सहयोग ।
जो औरों का कर रहे, धन्य धन्य वे लोग ।।
धर्म कभी क्या बदलता, बदले युग के साथ ।
क्या न आज वह बात है, जो पहले थी बात ।।
करने की इच्छा न हो, उसका नहीं उपाय ।
जो करना चाहो अभी, तो सब कुछ हो जाय ।।
धर्म-भावना आपकी, जब भी जाये जाग ।
कौन रोकता है कहाँ, कर सकते हो त्याग ।।
पाटण-भूपति का पढ़ो, दया भरा इतिहास ।
करना होगा आपको, अपने पर विश्वास ।।

कुमारपाल का काल

मध्य रात्रि के नीरव क्षण में, पाटण का प्राङ्गण सोया।
मानो हल्का किया जा रहा, भार दिवस में जो ढोया॥
सोते सुखी-दुःखी रोते यह, उक्ति हो रही थी चरितार्थ।
जो न सुखी है जो न दुःखी है, आत्मोन्मुखी वही गीतार्थ॥
नृपति कुमारपाल का शासन, धर्म-न्याय-प्रिय वाला था।
राज्य प्रजा का ही था मानो, नृप केवल रखवाला था॥
राजा सुखी प्रजा के सुख से, प्रजा दु.ख से दुःखी महान।
हेमचन्द्र आचार्य प्रवर से, नृप ने पाया ऊँचा ज्ञान॥

राजा चौंक उठे

रोने का स्वर दिया सुनाई, नृपति अचानक चौंक उठे।
सोया शिशु क्या नही चौकता, श्वान कही जो भौंक उठे॥
कौन दुःखी है ऐसा जो इस क्षण में रोता जाता है।
मेरा राज्य धर्ममय है क्या ? प्रश्न सामने आता है॥
बदला वेष विशेष स्फूर्ति से, चले अकेले उठकर के।
मन ही मन रोते जाते ज्यों, पथिक अकेले लुट करके॥

स्त्री रो रही है

देखा एक पेड़ के नीचे, रोती है अबला - बाला।
कोई नही पास में इसकी - अश्रु - व्यथा सुनने वाला॥
राजा बोला बहन ! आप क्यो, करती है क्रन्दन भारी।
कष्ट कथा जो मुझे कहोगी, तो होऊँगा आभारी॥
किस्मत की मारी नारी मै, मुझे अकेली रोने दो।
जो कुछ होना है उसको तुम, बड़ी शान्ति से होने दो॥
सुनकर कष्ट कहानी तुम क्या, कर पाओगे ओ राही।
सम्भवत मै कुछ कर पाऊँ, हुक्म पलट जाऊँ शाही॥

कारण एक अगर होता तो, तुम्हें सुना भी देती भ्रात ! ।
किसे सुनाऊँ किसे छुपाऊँ, नही समझ में आती बात ॥
जो हो प्रमुख वही वतलाओ, सुनकर स्त्री बोली ऐसे ।
कष्ट कुमारपाल नृप पहला, नर बोला है वह कैसे ? ॥
कैसे क्या ? वह मुझे सुबह ही, भिखारिणी कर देगा जी ।
मेरी जो सम्पत्ति सभी ले, निधियों में भर लेगा जी ॥
क्या अपराध तुम्हारा ऐसा, नृपति तुम्हें देगे यह दण्ड ।
है अपराध नही कुछ भी पर, नियम राज्य का यही अखंड ॥

वात ऐसी है

भाग्य - दोष है मेरा, मेरा पुत्र हो गया काल - कवल ।
युवक बीस वर्षो का था वह, जिसका मुख था चन्द्रधवल ॥
पुत्र-शोक की परमवेदना, उसके पिता न सह पाये ।
गिरे धरा पर गये उसी क्षण, नही मुझे कुछ कह पाये ॥
पुत्र गया, ले गया पिता को, रही अकेली मे रोती ।
मै भी मर जाती जो छाती, नही वज्र तुल्या होती ॥

दोहा

जो सम्पत्ति अपुत्र की, वह ले लेता राज्य ।
लिए राज्य के पाप का, अर्थ न होता त्याज्य ॥
मैं पति-हीना दीन बन, दर दर माँगूँ भीख ।
नियम राज्य का है नही, लिए स्त्रियों के ठीक ॥
क्या कर सकते अब कहो, तुम इसमें सहयोग ।
कष्ट नही सुनते यहाँ, बडे - बडे भी लोग ॥

नीति भरा आश्वासन

सुनो सुनो अब राज्यकोष मे, जमा न होगा धन तेरा ।
तेरे लिए समझ ले पुत्री, शुभ सहयोग प्रथम मेरा ॥

अगर राज्य अधिकारी कोई, पास तुम्हारे आये भी।
तुम राजा के पास पहुँचना, निर्भय को क्यों खाये भी[१] ॥
घर जाओ, विश्वास जमाओ, आत्मघात की तज दो बात।
अगर अकेली जा न सको तो, चलूँ तुम्हारे घर तक साथ ॥
ऐसे शब्दों से नारी को, ढाढस मिला बड़ा भारी।
साहस ही जीवन होता है, कहते सारे संसारी ॥

नई घोषणा

दोनों अपनी-अपनी गति से, चले वहाँ से घर की ओर।
यह थी कौन ? कौन था यह यों, सोच रहे दोनो बा-गोर ॥
नीद नही आई राजा को, रहा टहलता सारी रात।
पति के धन पर नारी का, अधिकार नही यह कैसी बात ? ॥
सुत के धन पर माताओं का, माना गया न क्यों अधिकार।
उठते रहे उचितता के सह, नई दिशा के नये विचार ॥
स्त्रियाँ विवश होकर बेचारी, आत्मघात कर मर जाती।
कोई सी जीवित बच पाती, वज्र सदृश रखकर छाती ॥
निर्णय अटल लिया राजा ने, नियम बदलना आज मुझे।
अगर नियम यह बना रहा तो, नही चाहिए राज मुझे ॥
राज-सभा में सुबह पहुँच कर, नई घोषणा कर डाली।
जमा नही उसका धन होगा, जिसकी कोख रही खाली ॥
चौंके सभी सभासद बोले, राज्य रहेगा घाटे मे।
राजा बोला कभी न होगी, सुनो दाल या आटे में ॥
दुखियों की आहों वाला धन, पाटणपति को नही पसन्द।
इसीलिए करनी है हमको, अब से प्रथा पुरानी बन्द ॥

---

१ भय

जैन श्राविका का साहस

दोहा

भूमि का महत्त्व

त्याग शौर्य शुचिता भरा, राजस्थान प्रदेश।
जैन श्राविका का रखूं, उदाहरण श्रुचिवेष ॥
पुरुषो से पीछे नही रहा स्त्रियों का त्याग।
कोई कैसे त्याग दे, जो हो अपना भाग ॥
परिचित पन्ना धाय से, पुस्तक का प्रतिपृष्ठ।
त्याग और बलिदान है, उदाहरण उत्कृष्ट ॥
निज सुत देकर के रखे, उदयसिंह के प्राण।
पन्ना फिरती ढूंढती, शरण सुरक्षित स्थान ॥
आश्रय दे पाये नही, सिंहराव यशकर्ण।
मानों गिर कर सड़ पड़ा, स्वामि-भक्ति का पर्ण ॥
पुत्र मृत्यु पर शोक का, जिसने लिया न सांस।
स्वामि सुरक्षा के लिए, आखिर बनी निराश ॥

राधेश्याम

कुम्भलमेर चलो

पन्ना के साथी सब बोले, होना नहीं निराश हमें।
अपनी सच्ची स्वामि-भक्ति पर, पूरा है विश्वास हमे ॥
कुम्भलमेर किले का अधुना, किलेदार है आशाशाह।
है वे जैन और श्रावक है, वीर दयालु-कृपालु अथाह ॥

आश्रय वहाँ मिलेगा हमको, श्रावक निर्भय होते है।
सभी राजपूतों को छोड़ो, हम क्यो खाते गोते हैं॥
पन्ना गई उदयसिंह को ले, बोली इसको आश्रय दो।
जिससे मेवाड़ी कुलदीपक, पूर्ण रीति से निर्भय हो॥
इसे अभी बनवीर शत्रु से, बचा लीजिए आशाशाह।
श्रावक ने शिशु पर पन्ना पर, डाली अपनी एक निगाह॥

बनवीर कौन था

राणा श्री सग्रामसिंह की, मृत्यु हुई जिस अवसर पर।
उदयसिंह थे एक वर्ष के, कौन बने अब गद्दीधर॥
सरदारो ने छोटे भाई, दिया विक्रमाजित को राज।
मान्य सभी को करना पड़ता, जो कर देता सभ्य समाज॥
चार वर्ष की अल्पावधि मे, वे भी बने काल के भोग।
सिंहासन पर किसे बिठाये, लगे सोचने ऊँचे लोग॥
उदयसिंह है पाँच वर्ष के, कैसे कर पाएँगे राज्य।
बाल-काल कोमल होता है, जैसा कोमल होता आज्य[२]॥
मेवाड़ी गद्दी पर सबने दासी-सुत[१] को बिठलाया।
संरक्षक बन राज्य करो तुम, सरदारों ने समझाया॥
क्षात्र तेज कैसे आ सकता, आखिर था वह दासी-पुत्र।
जैसा बीज हुआ करता है, वह छिपकर जाएगा कुत्र॥
चलने लगा कुटिल चाले वह, सिसोदियों का करदूं अंत।
कैसे छिप सकता है ऐसे-पापी का षड्यंत्र ज्वलंत॥
पन्ना ने निज सुत की बलि दे, बचा लिया था बालक को।
ढूँढ रही थी स्थान-स्थान पर, अब इस शिशु के पालक को॥

---

१ घी २ बनवीर

आशाशाह की चुप्पी

अभी अभी इनके घर आकर, दूत दे गया था धमकी ।
दिया अगर पन्ना को आश्रय, चमकेगी विद्युत गम की ॥
भय था वंश नाश होने का, अतः न निकले मुख से बोल ।
श्री बनवीर नृपति से बोलो, कौन शत्रुता लेता मोल ॥
पन्ना रोती रोती बोली रहा न कोई स्वामी-भक्त ।
शौर्यविहीन व्यक्तियों का यह, कैसा बुरा आ गया वक्त ॥
मैं मर जाऊँ इस सुत के सह, रहा न कोई अन्य उपाय ।
कहीं नही जायेगी, कुछ भी, नही कहेगी पन्ना धाय ॥

माँ उठ आई

यह आवाज पड़ी कानों में, उठकर बाहर आई माँ ।
अपने सुत की कमजोरी पर, बहुत बहुत झल्लाई माँ ॥
पन्ना से बोली है ऐसे—कायरता की करो न बात ।
उदयसिंह को मैं पालूंगी, और रखूंगी मेरे साथ ॥
प्राणिमात्र की रक्षा करना धर्म हमारा है बेटे !
यह तो अपना ही स्वामी है, असु से प्यारा है बेटे ॥
संकटग्रस्त व्यक्ति को देता, दान अभय का महान दान ।
उसको जैन धर्म की महिमा, का कुछ-कुछ हो पाया ज्ञान ॥
वह पृथ्वी का भार उसे है, जीने का अधिकार नही ।
जिसे दया से अभयदान से, उपजा अन्तर प्यार नही ॥
जिन हाथों से तुझको, पाला-पोषा इतना किया बड़ा ।
उनसे ही मैं इस धरती पर, रहने दूँ क्यों तुझे खड़ा ॥

क्षमा करो माँ !

आशाशाह लगे कहने माँ !, करो क्षमा का दान मुझे ।
कर्त्तव्यों का स्वामिभक्ति का, हो आया है ज्ञान मुझे ॥

सोच रहा था मैं कुछ कुछ पर, निर्णय ले न सका सत्वर।
स्वामिभक्त हम बने रहेंगे, है अपना मेवाड़ी घर॥
अमर रहेगी स्वामिभक्ति की, गाथाएं इतिहासों में।
हम से क्या वनवीर लड़ेगा, जिसकी गिनती दासों में॥

मां को गौरव :

माँ बोली बेटे तेरे पर, गर्व मुझे अति आता है।
जिसके तेरे जैसा बेटा, वह मेरे सी माता है॥
अमर करो तुम कीर्ति वश की, देशभक्त बनकर सच्चे।
जैनी श्रावक दयाधर्म के, पालक कब होते कच्चे॥
हाथ फिराने लगी शीश पर, उमड़ पड़ा सुत-प्यार भला।
मां बेटे से बढकर बोलो, क्यों होता ससार भला॥
अभी अभी तू मुझे मिटाकर, हल्का करती थी भू-भार।
अभी अभी तू लुटा रही है, मातृ-हृदय का पावन-प्यार॥
हाँ बेटे ! हम माताओं का, होता ऐसा एक स्वभाव।
हम सतति में देख न पाती, त्याग शौर्य का कभी अभाव॥
चाहे पति हो, चाहे सुत हो, धर्मी दयावान हो शूर।
कायर और अधर्मी जनकर, नही गँवाती अपना नूर॥
कायर और कुलक्षण वाली, सतति कुलक्षय कर देती।
शूर सुलक्षण वाली सतति, अमर विजय पद वर लेती॥

मेरा भतीजा है

है यह मेरा एक भतीजा, ऐसा कहते आशाशाह।
कार्य वही होता जो होती, माता जी की नेक सलाह॥
युवा हो गए उदयसिंह जब, इन्हें दिलाया सिंहासन।
सहायता की इसमें भारी, देकर अपना तन-मन-धन॥

चिन्तनीय क्षण

जैन श्राविका के साहस ने, कैसा उत्तम कार्य किया।
त्याग शौर्य साहस श्रम सेवा, स्वामिभक्ति का लाभ लिया॥
जो न बड़े योद्धा कर पाये, वह कर पाई माता एक।
मांग रहा प्रत्येक क्षेत्र, इन माताओं से बड़ा विवेक॥
माताएँ आगे आएँगी तो, सुधरेगा सकल समाज।
बागडोर इनके हाथों में, पहले भी थी, है भी आज॥
पुष्कर मुनि इन माताओं के, त्याग और बलिदान बड़े।
माताओं की चर्चाओं से, भरे पडे व्याख्यान बड़े॥
जैन साध्वियां, बहनें मिलकर, सोचेंगी कुछ करने को।
राज-समाज-देश-जग का हित, हो वह साहस भरने को॥
रायचूर चौमास काल में, साहित्यिक कुछ काम हुआ।
जिनसे शुभ सहयोग मिला है, उन सबका शुभ नाम हुआ॥

□

28

भोज का भाग्य

[ख्याल की षट्पदी]

नृप भोज बोलता चलती यह माया किसके साथ में।
मालव देश पुरी धारा का, नरपति मुञ्ज महान ।। टेर ।।
अर्ध हिन्द पर शासन करता, मधु सम मिष्ठ जबान।
प्रतिपल चिन्तातुर रहता है, क्योंकि नहीं सन्तान जी ।।
सिन्धुल रानी रत्नवती से, जन्म भोज ने पाया।
पूर्वोपार्जित पुण्यों से थी, रतिपति सम शिशु काया ।।
रखा मुञ्ज ने उसे पढाने, पढ़ने का दिन आया जी।
मुञ्ज सभा मे एक ज्योतिषी, अवसर पाकर आया ।।
देख भोज को उसने उसका, भाग्य भविष्य बताया।
आपके पीछे मालव-मालिक, होगा यही सवायाजी ।।

भोज का भविष्य

पञ्चाशत् पञ्चवर्षाणि, सप्तमासान् दिनत्रयम्।
भोजराजेन भोक्तव्यं, सगौडो दक्षिणापथः ।।

[मूल की]

ऐसा सुनकर मुंज भूपति के, बदले दिली विचार।
इसको भेज देना पर-भव में, रखने में क्या सार ।।
सत्वर चार वधिक बुलवाये, दिल से दया विसारजी ।।

जाओ उसे साथ ले जावो, दो जंगल में मार।
होती मालिक की आज्ञाएँ, सेवक को स्वीकार ॥
सुनकर हुक्म भूप का ऐसा, बधिक हुए तैयार जी···॥
गये पाठशाला में सत्वर, लिया भोज को साथ।
लगा पूछने भोज बताओ, आज नई क्या बात ? ॥
तुम्हें घूमने ले जायेगे, आयेगे नरनाथ जी ॥
जंगल में जा खड़ा किया, तब सारा भेद बताया।
लगा मारने लेकिन दिल में, दया भाव भर आया ॥
जीवित छोड़ा कहा भाग जा, तेरा भाग्य सवाया जी·· ॥
बोला भोज भगूंगा मै यह, देना नृप को पत्र।
कागज नही, मिला लिखने को, वृक्ष-पत्र ही तत्र ॥
बहुत प्रसिद्ध हुआ जगती पर, श्लोक वही सर्वत्र जी···॥
भगा भोज जीवित बच करके, मन मे नही उदास।
कोई नही पास में लेकिन, भाग्य स्वय का पास ॥
जिसका हो आयुष्य न उसका, हो सकता है नाश जी···॥

राधेश्याम

राज-सभा में

गये वधिक नृप की सेवा मे, बोले काम किया सम्पूर्ण।
मृत नर का कुछ पता न होता, उड़ता यथा पवन में चूर्ण ॥
क्या कुछ कहा भोज ने मेरे लिये बताओ सारा हाल।
पत्र एक भेजा है राजन्, जो हम लाये है सम्भाल ॥

श्लोक

मान्धाता स महीपतिः कृतयुगालकारो भूतो गत.।
सेतुर्येन महोदधौ विरचित. क्वासौ दशास्यान्तकः ॥
अन्ये चापि युधिष्ठिरप्रभृतयो याता दिवं भूपते !।
नैकेनापि संम गता वसुमती मन्ये त्वया यास्यति ॥

राधेश्याम

श्लोक गत भावार्थ

कहाँ गया मांधाता जो था, अपने युग का शुभ शृङ्गार।
कहाँ राम जिनने बाधा था, सागर पर पुल भली प्रकार॥
कहाँ युधिष्ठिर आदि नरेश्वर, गये छोड़ शासन भण्डार।
पृथ्वी साथ न गई किसी के, इस पर करना जरा विचार॥
लेकिन लगता है ऐसा यह, जायेगी अब तेरे साथ।
ऐसा अगर न होता तो क्यों, होता ऐसा मेरे साथ॥
मुझे नही कुछ कहना है बस, जो कहना था कह डाला।
मारक नही बड़ा होता है, बड़ा यहाँ है रखवाला॥

मुंज का परिवर्तन

पढ़कर श्लोक मुंज ने सोचा, हाय हाय अन्याय हुआ।
गई बात के लिए कारगर, कोई नही उपाय हुआ॥
भीगे नयन अश्रुधारा से, हृदय टूटता जाता है।
अपना ही अपराध स्वयं को, क्या न काटने आता है॥
हो करबद्ध वधिक तब बोले, माफ करो राजन्! अपराध।
क्योंकि आप बक्सा करते है, गुनह बड़ा-छोटा एकाध॥
हमने मारा नहीं भोज को, आज्ञा हो तो लाये शोध।
ज्यों सम्यक्त्वी पा जाता है, खोया हुआ स्वयं का बोध॥

[तर्ज—ख्याल की]

वक्सीस पाओगे

जाओ, लाओ, उसे तुरन्त अब, है मेरा आदेश।
जो लाओगे तो पाओगे, तुम बक्शीश विशेष॥
वधिक गये, ले आये उसको, काम रहा क्या शेषजी···॥

मिले परस्पर मुंज भोज अब, हुआ अधिक उल्लास ।
पुनः लौट आया रोगी का, मानो दुर्लभ साँस ॥
इसीलिए होता है हमको, किस्मत पर विश्वास जी···॥

भोज राजा बने

भोज बने मालवपति देखो, जान रहा संसार ।
किया जिन्होंने संस्कृत गीः का कितना, बड़ा प्रचार ॥
भूप न हुआ दूसरा ऐसा, ऐसा एक विचार जी···॥

अमर गच्छ में स्वच्छ हृदय श्री, तारा गुरु गुणवान ।
दो हजार तीन का पावस, किया धार में आन ॥
पुष्कर मुनि कहता ओ लोगों, करना धर्म ध्यान जी···॥

□

29

देश प्रेमी-भामाशाह

दोहा

श्रावक भामाशाह ने, किया गजब का त्याग।
देशभक्ति का देख लो, अन्तःस्थित अनुराग ॥
मुगल सैनिकों का लगा, पहरा चारों ओर।
प्रहर दूसरा रात का, छाया था घन घोर ॥
अंधेरा था अत्यधिक, बरस रही बरसात।
पास खड़े नर का वहां, नही दीखता हाथ ॥

राधेश्याम

हल्दीघाटी के रण में जब, राणाजी ने खाई हार।
फिर भी पराधीनता को वे, देते थे दिल से धिक्कार ॥
इन्हें पकड़ने की इच्छा से, सेना का था वहाँ पड़ाव।
सावधान जो रहता उसका, कभी कभी लग जाता दांव ॥
छीन लिए थे राणाजी के, अकबर ने वे सभी किले।
सेना शक्ति रहित होने से, कैसे वापिस किले मिले ॥
कभी कही पर कभी कही पर, छिपे पड़े रहते अज्ञात।
निष्क्रिय सा जीवन जीते थे, परालब्ध की ऐसी बात ॥

एक दु:खद घटना

वन - विलाव ले भागा रोटी - पुत्र तेजसी के कर से।
राणा का पत्थर दिल पिघला, सुत के उस रुदन स्वर से ॥

सन्धि पत्र अपने हाथों से, लिखकर भेजा अकबर को।
स्थितियाँ शक्तिहीन कर देती, राणा जी जैसे नर को॥
खेमे में थे अमरसिह सुत, पुत्रवधू, पुत्री तारा।
और महारानी बैठी थी, पुत्र तेजसी अति प्यारा॥
इतने में राणा के सम्मुख, करता भामाशाह प्रणाम।
ओ स्वामी मेवाड़ देश के, अभी आप से है इक काम॥

सचिव और स्वामी

मुख्य सचिव का स्वर पहचाना, हुए उछल कर आप खड़े।
ओ मेवाड़देश के गौरव! आओ प्यारे सचिव बड़े॥
यह श्री-हीन प्रताप आपका, स्वागत करता है मन से।
ऐसा कभी न कहिये स्वामिन्! आप बड़े है जीवन से॥

सर्वस्व समर्पण

करो युद्ध की तैयारी बस, बनो न मन से आप निराश।
विजय मातृ भूमि की होगी, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास॥
सचिव! मुझे भी जन्म-भूमि यह है, प्राणों से भी प्यारी।
इसे छोड़कर जाना होगा, ऐसी स्थितियाँ है सारी॥
यह लो भेंट इसी से स्वामिन्! आप कीजिए देशोद्धार।
पल सकते है सुख से सैनिक, बीस वर्ष तक बीस हजार॥
इतनी यह संपत्ति आपके, चरणों में स्वीकारो भेंट।
मातृभूमि पर मत पड़ने दो, मुगलशासकों की भी फेंट॥
मुझे त्याग करने का अवसर, पाने दो लो धन सारा।
अपना देश, देश का स्वामी, मुझे सदा से है प्यारा॥

दोहा

आग्रह भामाशाह का, किया गया स्वीकार।
राणा ने डटकर पुनः, की सेना तैयार॥

लड़कर अपने शत्रु से, बचा लिया है देश।
सेवक स्वामी की रही, जीवित कीर्ति हमेश ॥

राधेश्याम

पुष्कर मुनि ऐसे श्रावक से, शोभित होता सारा देश।
राष्ट्रधर्म के अनार्गत है, देशप्रेम भी धर्म-विशेष ॥
अगर जियेगा देश हमारा, तो हम सुख से जीयेगे।
जीयेंगे तो धर्म करेंगे, जिन - वचनामृत पीयेंगे ॥
जिनवचनामृत पीयेंगे तो, कर पायेंगे बेड़ा पार।
इससे बढकर क्या निकलेगा, देशप्रेम का ऊँचा सार ॥
रायचूर चौमासे में हम, अपने को सभालेंगे।
देशप्रेम ही धर्मप्रेम है, ऐसा सार निकालेंगे ॥

□

30

दया-धर्म की विजय

दोहा

धर्म का मूल

दया धर्म का मूल है, अन्य धर्म फल फूल ।
दया धर्म के देख लो, धर्म सकल अनुकूल ।।

जीव मात्र इस जगत के, दया धर्म के पात्र ।
क्या उसके पीड़ा न हो, जिसने पाया गात्र ।।

जीवन प्रिय अप्रियमरण, सर्वमान्य सिद्धान्त ।
इसका उल्लंघन न हो, रखिये ध्यान नितान्त ।।

अकबर ने इस बात पर, दिया बहुत ही ध्यान ।
उदाहरण प्रस्तुत करूं, पुष्कर दया - प्रधान ।।

सर का दर्द

एक बार अकबर के सर में, दर्द हुआ था अति भारी ।
वैद्य हकीम सभी उठ आये, मिटा न पाये बीमारी ।।
दर्द न घटता बढ़ता लेकिन, जमा वहीं का वही रहा ।
वैद्यों और हकीमो के सब, नुस्खों में बल नही रहा ।।
औषधि एक एक से उत्तम, वैद्य वैद्य से थे उत्तम ।
उत्तम हैं अनुपान पथ्य सब, उत्तम है सेवाएँ श्रम ।।
सभी रात दिन चिन्ता करते, कहो उपाय करे हम क्या ।
निष्फल ही जायेगा श्रम सब, लेकिन आज करे गम क्या ? ।।

दवा नही जब काम उठाती, झाड़ा फूंक कराया जाय ।
मन्त्र-तन्त्र का और यन्त्र का, चमत्कार अजमाया जाय ॥
आये सन्त फकीर ओलिये, झोली डण्डा लिए हुए ।
श्रेष्ठ इलाज आज तक जितने, सभी सुनाते किये हुए ॥
मन्त्रित जल पीने को देते, गिनने को देते कुछ पाठ ।
यन्त्र बाँधने को देते कुछ, दिखला देते अपने ठाठ ॥
मांत्रिक तांत्रिक ओझा बाबा, संन्यासी सब आये जी ।
शिरोवेदना अकबर की पर, नहीं मिटाने पाये जी ॥

जोधाबाई की सेवा

औषधियों का सेवन सारा, बन्द कर दिया आकर तंग ।
शयनकक्ष में सोया सोया, देख रहा पीड़ा का रंग ॥
नही बोलता नही बुलाता, रहता पड़ा स्वयं चुपचाप ।
सेवा करने वाले भी क्या, कभी बंटाया करते पाप ॥
जोधाबाई छाया - नांई, बैठी रहती पास सदा ।
पति की पीड़ा से उत्पीड़ित, रहती बनी उदास सदा ॥
पाँव दबाती दिल बहलाती, बात बनाती मधुर-मधुर ।
कभी निहारा करती केवल, अकबर का मुख टुकुर टुकुर ॥
जोधाबाई की सेवा पर, अकबर का खुश था अन्तर ।
झूठी खुशियो का घर होता, केवल मुख पर जिह्वा पर ॥

जोधाबाई का संकेत

एक बात मेरी भी रखलो, कहो आप क्या कहती हो ।
हमको लिया खरीद आपने, पास खड़ी ही रहती हो ॥
आये हुए यहाँ पर हैं जी, जैन संत दो अभी-अभी ।
उनके दर्शन करने को क्या, जाने का है कभी - कभी ॥

दर्शन कौन नहीं चाहेगा ? लेकिन समय नही मिलता ।
मेरी सेवा में ही सारा, समय निकलता खिलखिलता ।।
ऐसा नहीं सोचिये स्वामिन् ? पति सेवा है मेरा धर्म ।
स्त्री कर्तव्य-धर्म-सेवा में, कभी न समझा करती शर्म ।।
तो क्या कहना है बोलो उन, संतों के ही बारे में ।
मैं क्या कहूँ आप भी तो सब, समझे क्या न इशारे में ।।
हाँ हाँ वह दिन याद मुझे है, जिस दिन दर्शन पाये थे ।
हीरविजयसूरीश्वर प्यारे, स्वयं यहाँ जब आये थे ।
शांत और तेजस्वी मुख पर, शरमाने लगता निशिनाथ ।
दुःख शोक चिन्ताएँ हरतीं उनकी एक-एक वह बात ।।
सीमातीत ज्ञान सुखकारी, दुःखहारी आचरण पवित्र ।
शब्दों मे कब बंधपाता है, गुरु-दर्शन सेवा का चित्र ।।
हां-हां याद आपको सब है, कैसे मैं उनको भूलू ।
उनकी स्मृति जब भी आती है, रोम-रोम में मैं फूलू ।।
दिया आपने ही था उनको, नया खिताब जगद्गुरु का ।
मैं क्या उनको देता, मुझको, आता ख्वाब जगद्गुरु का ।।

उन्हें बुला लूं

आज्ञा दो तो उन्हें बुला लूं, हां हां उन्हें बुला लो बस ।
मेरा मतलब एक और है, जिसके खातिर करूं विवश ।।
उनसे आप अर्ज कर देना, अपना दर्द मिटाने की ।
जब तकलीफ उन्हें देनी है, इन महलों तक आने की ।।

अहं पर चोट

सुनकर चौंका बादशाह क्या मैं भी उनसे अर्ज करूं ।
सिर का दर्द मिटा देने की, मैं संतों की गर्ज करूं ।।

महाबली की इस हुकुमत से, चलता सारा हिन्दुस्तान।
जिसके फरमानों को देते, सूर्य चन्द्रमा भी सम्मान ॥
देखे अभी अभी अधकचरे, वैद्य हकीम फकीर बड़े।
संत ओलिये ओझे बाबा, फक्कड़ लक्कड़ पीर बड़े ॥
खुद को और खुदा को धोखा, देते जनता को धोखा।
मैंने इन सब की चालों का, देखा है लेखा-जोखा।
क्या ऐसे ही जैन सत है, अकबर बोला है अफसोस।
जैनी संतों के सिर पर मै, नही लगाता कोई दोष ॥
वे न चमत्कारी होते है, क्या सर-दर्द मिटायेगे।
केवल दर्शन देने को वे, नही यहाँ तक आयेगे ॥
चमत्कार क्या सकल सिद्धियाँ, रहती उनके पास सदा।
रखते है दुनियादारी से, मन को दूर उदास सदा ॥
आत्म-प्रशसा से बचने को, आत्म-शुद्धि में रहते लीन।
उदासीन संतों का है यह, धर्मपंथ प्राचीन-नवीन ॥
अकबर बोला—आप उन्हे बस, इन महलों में बुलवाये।
अर्ज करेंगे हम उनसे वे, दर्द मिटा सुख पहुँचाये ॥

सत आ गये

भानुचन्द्र यति शांतिचन्द्र मुनि, को आदर से बुलवाया।
आते ही अकबर ने झुककर, वन्दन करके सुख पाया ॥
भानुचन्द्र ने पूछा—कैसे, मलिनानन हो दिल्लीश्वर।
सिर पीड़ा से उत्पीड़ित हूँ, बहुत समय से है गुरुवर ! ॥
सभी इलाज कराये लेकिन, आया एक नही माकूल।
जितनी माँगी गई दुआएँ, नही एक भी हुई कबूल ॥
मात्र सहारा रहा आपका, आप कीजिए महर-नजर।
गुरुजी बोले वैद्य नही हम, औषधियाँ दे पीड़ा-हर ॥

मौलवियों के जैसे हमको, मंत्र नहीं पढना आता।
रहा हमारा केवल अपने, महाव्रतों से ही नाता॥
जो हो आप जानते हैं सब, पूछो मेरे इस मन से।
हाथ रखो मेरे इस सर पर, दर्द मिटेगा जीवन से॥

दर्द मिट गया

भानुचन्द्र यति जी के मन में उमड़ा अनुकंपा का भाव।
सर पर हाथ रखा अकबर के, मन पर भारी पड़ा प्रभाव॥
एक बार दो, बार तीसरी बार फिराया सर-पर कर।
सर की पीड़ा चली गई उठ, नारी ज्यों व्रीड़ा धरकर॥
शोक दु:ख की रही न छाया, काया में छाया है हर्ष।
उठकर अकबर कर लेता है, यतिजी के चरणों का स्पर्श॥
चमत्कार इससे बढकर क्या, दिखलायेगे जैनी सत।
अकबर और देखने वाले, हुए प्रभावित भी अत्यन्त॥
धर्म अहिंसा के द्वारा ही, पीडा शांत हुई सर की।
पशुओं की बलि बंद कीजिए, आज्ञा है यह अकबर की॥
जितने भी थे चाटुकार-जन, उनकी आशा टूट गई।
हाय हाथ में आई थी जो, डोरी वह भी छूट गई॥

बकरीद पर

यतिजी के दर्शन करने को, प्रतिदिन जाते थे अकबर।
सत्संगति का लाभ उठाते समझा करते धर्म-प्रवर॥

दोहा

यतिजी बोले एक दिन करना हमे विहार।
क्या कुछ भूल हुई कहो, उसका करूँ सुधार॥
आता है बकरीद का, परसों तक त्यौहार।
हमें चले जाना उचित, करके धर्म-विचार॥

मारे जाएँगे यहाँ, प्राणी सब निर्दोष।
दबता उनकी चीख से, दयाधर्म का घोष॥

राधेश्याम

ज्ञान भरा संवाद

इस पर मै क्या कर सकता हूँ, कहता यही कुरान शरीफ।
क्या कहता है ध्यान लगाकर, करो समझनें की तकलीफ॥
औरों के प्राणों को लेकर, क्या त्यौहार मनाया जाय।
ऐसा अगर नही होता तो, करते हम भी अन्य उपाय॥
खुदा कभी क्या खुश होता है, लेकर जानवरों की जान।
बात समझ में नही आरही, किन्तु नही मै तो विद्वान॥
जैसा कहते हमें मौलवी, वैसा ही हम करते हैं।
पाप कराकर धर्म कराया, वे ऐसा दम भरते है॥
"मै तो हूँ मजबूर" बताकर, चुप हो गया यही अकबर।
पहरेदार खड़ा था उसने, कहा मौलवी से जाकर॥

मौलवी और अकबर

सभी मुफ्तियो मौलवियों को, और काजियों को लेकर।
चला प्रधान मौलवी पहुँचा, जहाँ विराजे थे अकबर॥
आज मुबारकबाद हमारा, करे पेशगी आप कबूल।
इदुज्जुहा आ रही है जी, कैसे इसको जाये भूल॥
क्या यह नई प्रथा करते हो, देकर प्रथम मुबारक बाद।
किया किसी ने भी क्या ऐसा, नही किसी को भी है याद॥
दरियादिली आपकी लखकर, बढ़ा हौसला लोगों का।
भड़काते हैं क्या न आपको, दिखला लाभ प्रयोगों का॥
अकबर समझ गया है सब कुछ, बोला ऐसी ही है बात।
आओ बैठो बात करो हम, सोचेंगे समझेंगे साथ॥

तर्क पर तर्क

पैदा करता खुदा सभी को, बात आप यह मान रहे।
क्यों बकरों को हम मारे बस, इतना सा ही ध्यान रहे ॥
जिसने बकरा मारा उससे, खुश होगा क्या कहो खुदा।
जिसने मारा जिसको मारा, दोनों से क्या खुदा जुदा ॥
अगर कुरान यही कहता है, बात समझ से बाहर है।
ऐसा सुनकर सभी मौलवी, बोले होकर समस्वर है ॥
पढा लिखा हो जानकार हो, लाओ उसको समझाये।
पैगम्बर की जो आज्ञा है, जो मर्जी है दिखलाये ॥

मुनिजी के समक्ष

शांतिचन्द्र मुनिजी को लाये, करने को शास्त्रार्थ यहाँ।
जो कुछ लिखी आयतें उनका, कर देना भावार्थ यहाँ ॥
जो होते है शाकाहारी, उनकी होती दुआ कबूल।
देकर के उद्धरण धर्म के, सबको बना लिया अनुकूल ॥
दयाधर्म की विजय हो गई, वलि से रहित बनी बकरीद।
शांतिचन्द्र मुनिजी से थी बस, अकबर को ऐसी उम्मीद ॥
अगर करेगा पशुवध कोई, पायेगा वह भीषण-दण्ड।
जो शाही फरमान निकलता, उसका पालन करो अखण्ड ॥
पन्द्रह सो बाणव की घटना[1], ऐसा कहता है इतिहास।
पुष्कर मुनि का दया धर्म पर, बहुत बड़ा आत्मिक-विश्वास ॥
रायचूर में लिखी जा रही पद्य - बद्ध कुछ घटनाएँ।
पढ़े पढाए सुने सुनाएँ, दयाधर्म को फैलाऐ ॥

१ पं० बनारसीदास चरित्र के आधार पर

31

अशौच भावना

राधेश्याम

भरा अशुचियों से यह नरतन, झांको अन्दर ज्ञान करो।
देख बाह्य सौन्दर्य स्वय पर, मत झूठा अभिमान करो॥
गहराई से जीवन जीओ, धार्मिक मृदु मुस्कान भरो।
जिसमे चिन्तन मंथन हो वह, अमृत मयी जबान झरो॥
जिनसे बनी हुई यह काया, जिनसे चलती है काया।
क्या उन सभी पदार्थों पर, बस ध्यान आपका है आया॥
नव ग्यारह नाले नित बहते, कहते सत्य कथा सारी।
इतने पर भी कच्ची काया, कैसे लगती है प्यारी॥

एक सन्त

[तर्ज—ख्याल की]

यह तन है गंदा, क्यों रे लुभाता बंदा देख के···॥टेर॥
चैत्य शैल पर महातिष्य इक, स्थविर महा गुणधारी।
नई उम्र का योगी, त्यागी, आत्मानन्द विहारी जी···यह॥
एक दिवस भिक्षा लेने को, अनुराधनपुर जाते।
यत्ना सहित नजर नीची रख, अपना कदम बढ़ाते जी···यह॥
मिली सामने एक नवोढ़ा, उस मुनि को घर जाती।
लड़कर आई जो सासू से बड़-बड़ बकती आती जी···यह॥

क्रोध से काम

मुनि का रूप निरख कर महिला, भूल गई निज भान ।
क्रोध उतर कर चला गया है, लिया काम ने स्थान जी···यह ॥
हँसी स्थविर के सम्मुख बाला, हाव भाव दिखलाती ।
चली जाल फैलाने मुनि पर, स्त्री की भोली जाती जी···यह ॥
कब थे फँसने वाले सन्त वे, ज्ञान गुणों के धारी ।
अशुचि भावना भाते जाते, अपने चित्त मझारी जी···यह ॥

[तर्ज–दूर कोई गाये]

मुनिजी का चिन्तन

गंदगी का घर है, राचता क्यों नर है ।
मूढ मोह पाता हो, ज्ञानी न फँसाता हो···॥टेर॥
ऊपर ऊपर सुन्दर है, मैल भरा अन्दर है ।
नजर न आता हो, ज्ञानी···॥
सुन्दरता का छल है, मूत्र और मल है ।
ज्ञान बतलाता हो, ज्ञानी···॥
पावन है नही अंग, चाहे गोरा गोरा रंग ।
ढंग दिखलाता हो, ज्ञानी···॥

[तर्ज—ख्याल की]

शुद्ध भावना भाते मुनिवर, चले गए कुछ आगे ।
हारी नारी नयनवाण जब, अपने काम न लागे जी···यह ॥
इतने मे उसका पति आया, पूछी मुनि से बात ।
मेरी स्त्री क्या गई इधर से, जिसका सुन्दर गात जी···यह ॥
मुनि बोले—मैं नही जानता, नर-नारी का भेद ।
अस्थि-मांस का पिंजरा देखा, जिस पर आता खेद जी···यह ॥

गाथा

नाभिजानामि इत्थी वा, पुरिसो वा इतो गतो ।
अपि च अत्थिसघातो, गच्छते स महापथे ॥१॥

[तर्ज—ख्याल की]

नाम 'विशुद्धिमग्ग' ग्रन्थ का, बौद्ध धर्म के अन्दर ।
अशुचि भावना ऊपर उपनय, है यह कितना सुन्दर जी···यह ॥
तारक गुरु का शिष्य सुपुष्कर, पुष्कर में आ गाता ।
दो हजार तीस साल मे, आत्मिक हर्ष मनाता जी···यह ॥

☆

32

सबसे बड़ा कौन ?

[तर्ज–दिल्ली चल्लो३ जी]

कौन बड़ा है, कौन बड़ा है, कौन बड़ा है जी !
सब धर्मों में धर्म कौनसा, कहो बड़ा है जी ।टेर।
काशी के नरेश ने यों प्रश्न कर लिया ।
विद्वानों ने अनुभव वाला उत्तर दिया ।।
प्राण बिना क्या देह यह रहा खड़ा है जी ।।

[तर्ज–चुप चुप खड़े हो]

अनुभव ज्ञान होता, सदा न्यारा न्यारा है ।
बहती ज्ञानधारा है जी, बहती ज्ञान धारा है ।।टेर।।
"अहिसा ही परमो धर्म." सबने ऊँचा माना है ।
अनुभव वालों से यह, कही भी न छाना है ।।
वेदो और आगमों में वर्णन अपारा है···बहती ।।
"सच्चं खु भगवं" आगम का फरमान है ।
"सत्यमेव जयते" यह, श्रुति का ऐलान है ।।
सर्वश्रेष्ठ सत्य धर्म, जन-जन प्यारा है···बहती ।।
धर्मों में पहला धर्म, क्षमा बतलाया है ।
ऊँचा स्थान धर्मों में, सेवा ने भी पाया है ।।
दान भी है महान विद्यावानों का इशारा है···बहती ।।

ब्रह्मचर्य धर्म है महान सारे धर्मों में।
कर्म निष्काम ऊँचा, जैसे सारे कर्मों में॥
समझेगा क्यो नही जिसने विचारा है···बहती॥

उक्तियाँ ये सत्य इन्हे, कैसे टाला जायेजी।
इसीलिए एक निर्णय, ले नही पायेजी॥
इतने ही में योगी जी ने खोला भेद सारा है···बहती॥

[तर्ज–जय बोलो महावीर स्वामी की]

मत करो व्यर्थ मे तुम झगड़ा, आचरण धर्म है सबसे बड़ा।टेर।
जिस धर्म को बड़ा बताते हो, यदि सविधि उसे अपनाते हो।
कहलाता धर्माचरण कड़ा···आचरण॥
कोई पय को पौष्टिक कहता है, पीने से परे नित्य रहता है।
बल पाएगा क्या ? यह प्रश्न खड़ा···आचरण॥
जीवन में जब सद्धर्म नही, जीवन मे जब सत्कर्म नही।
वाणी से धर्म रहा जकड़ा···आचरण॥
सुनकर योगी की सत्य वानी, सारे विद्वानो ने मानी।
समझो यह सीधा पंथ पड़ा···आचरण॥
'मुनि पुष्कर' जीवन शुद्धि करो, धर्मानुसारिणी बुद्धि करो।
छोड़ो अब चिन्तन गला सड़ा···आचरण॥

वृद्धा की सामायिक

दोहा

श्री जिनपद की वन्दना, करूं भाव के साथ।
सामायिक व्रत पर लिखू, पुरातत्त्व की बात ॥

राधेश्याम

सामायिक महिमा

सामायिक व्रत आराधन से, भवसागर का मिलता पार।
पल में हलकापन आ जाता, हटता पूर्व कर्म का भार ॥
बावन लाख पचीस सहस पर, नौ सौ पच्ची पल्योपम।
सुरायुष्य का बन्धन पड़ता, इक सामायिक से उत्तम ॥
प्रतिदिन एक लाख मुद्राएँ, स्वर्णमयी का दान करे।
उससे अतिफल वह पाता जो, सामायिक का व्रत उचरे ॥

गाथा

दिवसे दिवसे लक्ख देइ, सुवणस्स खडियं एगो।
इयरो पुण सामाइयं, करेइ न पहुप्पए तस्स ॥

राधेश्याम

कच्ची युगल घड़ी का यह व्रत, पथ समता का बतलाता।
रुक जाते सावद्ययोग सब, जुड़ता आत्मा से नाता ॥
करो, कराओ, करो समर्थन, पर न मखौल कभी करना।
सामायिक में रखा नही कुछ, मुँह बाँध कर क्यों मरना ॥

क्या आसन में, क्या माला में, प्रमार्जनी में क्या है फिर।
सामायिक में मुँह-पत्ती में, रखा हुआ क्या कोई सिर ॥
सामायिक व्रत किए बिना क्यों, लेते मुँह में अन्न नही।
सामायिक व्रत किए बिना क्यो, बनता चित्त प्रसन्न नही ॥
करने वाले की श्रद्धा, पर, नही कुठाराघात करो।
जो न समझ मे आये ऐसी, नही निरर्थक बात करो ॥
काम स्वयं का स्वयं करो, मत निन्दा वाला पाप करो।
कही भूल हो जाए तो बस, उसका, पश्चात्ताप करो ॥
क्षमा याचना करे आप से, दोष उसे सब माफ करो।
उदाहरण सुनकर वृद्धा का, शंकाओ को साफ करो॥

कहानी का आरम्भ

एक शहर में एक सेठ जो, चला जा रहा था बाजार।
देखा एक किसी वृद्धा को, जो बैठी थी खोले द्वार ॥
बोला सेठ सुनो माजी क्यों, दिखती ऐसे आज उदास ?।
आज समाई हुई न मुझ से, छाई यही उदासी खास ॥
बोला सेठ कहो माजी क्या, इससे डूबा कोई धर्म।
उलट-पुलट कपड़े न किए तो, छूटा कहो कौन सा कर्म ॥
मुँह-पत्ति के प्रति-लेखन में, धर्म-क्रिया क्या होती है ?।
भोली जनता भ्रम में पड़कर, समय व्यर्थ ही खोती है ॥

मैं का स्वरूप

दीन-दुखी का दुख हरने को, मैं करता लाखों का दान।
कितना ऊँचा स्थान दान का, इसका मुझे बड़ा अभिमान ॥
कर मखौल चला यो श्रेष्ठी, हुआ धर्म का यह अपमान।
अपने ही कर्त्तव्यो की क्या, कर पाता है नर पहचान ॥

मखौल का फल

यही सेठ इस कर्म बन्ध से, मरकर हो जाता हाथी।
सिवा कर्म के कौन यहाँ पर, होता है स्नेही साथी ॥
वृद्धा मरकर उसी शहर मे, राजसुता हो जाती है।
रूप, कला, गुण, यौवन, श्री का, भरा खजाना पाती है ॥
जीव सेठ का जो है हाथी, नृप का बना गजेन्द्र प्रधान।
किया नही जाता क्या बोलो, यहां योग्यता का सम्मान ॥
किसी महोत्सव के अवसर पर, निकली नृप की असवारी।
महोत्सवों के अवसर पर ही, भीड़ जमा होती भारी ॥

पूर्व जन्म का बोध

राजमार्ग से जाते गज ने, देखा अपना पूर्व मकान।
पूर्व जन्म का ज्ञान हो गया, टूट गया मन का अभिमान ॥
मूर्च्छित होकर गिरा धरा पर, उठता नही उठाने पर।
भीड़ लगी लोगों की भारी, हटती नही हटाने पर ॥
नरपति का कार्यक्रम बदला, क्योंकि गजेन्द्र पड़ा बीमार।
नृप का प्यार अधिक था इस पर, प्रतिदिन होता था असवार ॥
राज सुता भी आज साथ थी, उसने देखा अपना स्थान।
चिन्तन करने से उसने भी, पाया पूर्व जन्म का ज्ञान ॥
सारी बात जानकर अब वह, द्विप के पास चली आई।
तूं था सेठ और मै वृद्धा, याद करो मेरे भाई ॥

— दोहा

उठ सिठि मम मत कर, करि हुओ दाणवसेण।
हूँ सामाइय राय - धुआ, बहुगुण समहिय तेण ॥

अकुश से जो उठा न हाथी, उठा सुता के कहने से।
लाभ नही समझा हाथी ने, पड़ा यहाँ पर रहने से ॥

विस्मित बने सभी नर नारी, सुनकर सारा बीता हाल ।
घटनाओं पर किया न जाता, अपना कोई खड़ा सवाल ॥

गज का उद्धार

गज ने उसको गुरुणी माना, किया अभक्ष्यों का कुछ त्याग ।
सामायिक व्रत प्रतिदिन करके, जमा कर रहा धार्मिक भाग ॥
लिया आठवाँ देवलोक अब, इस हाथी ने मर करके ।
फल कितने मीठे होते है, व्रत सामायिक संवर के ॥

कथा सार और पूर्ति

सामायिक की करो साधना, दूर हटाकर वाद-विवाद ।
अप्रमाद की उत्तमता का, आप लीजिए मधुरास्वाद ।
दो हजार उनतीस साल में, जोधाणे का वर्षावास ।
तारक गुरु का शिष्य शुभंकर, पुष्कर पाता परमोल्लास ॥

□

सत्यवादी मुहणसिंह

राधेश्याम

महाव्रतों में कठिन महाव्रत, इसी सत्य को माना है।
कहना कठिन नही माना पर, कठिन सत्य अपनाना है ॥
महावीर प्रभु की वाणी में, "सच्चं भगवं" मिलता पाठ।
"सतनारायण" का बतलाती, वैष्णव जनता रूप विराट ॥
पय है सत्य, सत्य पय मे घृत, घृत में स्नेह भरा है सत्य।
हुआ न हो सकता है देखो, तीन काल मे सत्य असत्य ॥
जड़ें सत्य की अति ऊंडी है, जड़े पकड़ता नही असत्य।
फल दोनों ही देते है, पर एक पथ्य है एक अपथ्य ॥
सतव्रतधारी हरिश्चन्द्र को, मिला नही क्या अपना राज्य।
राज्य त्याज्य है किन्तु सत्य का, व्रत है जीवनभर अत्याज्य ॥
सत से जुड़ी हुई जो लक्ष्मी, पुन. लौटकर आ जाती।
सत से पत है यही नसीहत, सत्पुरुषों के मन भाती ॥
जो सुख मिला सचाई मे वह, अच्छाई का दिया हुआ।
स्वीकृत उसे किया जाता है, जो हो अपना किया हुआ ॥

फिरोजशाह का समय

श्रावक एक मुहणसिंह का, मै उदाहरण रख देता हूँ।
दिल्ली तख्त फिरोजशाह का, वही जमाना लेता हूँ ॥
दृढधर्मी श्रावक व्रतधारी, मुहणसिह था वहाँ प्रधान।
ध्यान प्रधान उसी पर जाता, जिसका होता स्थान प्रधान ॥

नियम पर श्रद्धा

एक वक्त श्री बादशाह के, साथ हो रहा कही प्रवास ।
साथ उसी को लिया जा रहा, जिसका मन में हो विश्वास ।।
प्रतिक्रमण का समय देखकर, श्रावक उतरा घोड़े से ।
नियम निभाने वाले श्रावक, मिलते है पर थोड़े से ।।

बादशाह की चिन्ता

आगे जाकर बादशाह ने, देखा नजर न चढ़ा प्रधान ।
अभी साथ था हुआ कहो क्या, वन है गुप्तचरों का स्थान ।।
देखो इधर-उधर दौड़ो यों, सुभटों से आदेश दिया ।
आये, सुभट मुहणसिंह की, देखी एक विशेष क्रिया ।।
फरमाते है याद आपको, बादशाह श्री रुक करके ।
जो कुछ फरमाया कह डाला, प्रमुख सुभट ने झुक करके ।।

बादशाह की प्रसन्नता

बादशाह के पास गया अब, पूछ लिया सारा वृत्तान्त ।
मुहणसिंह ने प्रतिक्रमण का, समय बताया होकर शान्त ।।
सुनकर फूला शाह हृदय में, धर्मात्मा हो आप बड़े ।
लिए हुए नियमों के प्रति यों, बडे सजग हो बडे कड़े ।।
अब न अकेले रुकना पीछे, तकते रहते दुश्मन घात ।
रुकना जहाँ, वहाँ रख लेना, ये पन्द्रह सौ योद्धा साथ ।।

मुहणसिंह की निर्भयता

मुहणसिंह ने कहा विनय से, डरता कभी न धर्मी नर ।
उसके लिए समान गिना है, जंगल हो चाहे हों घर ।।
जिसने रखा धर्म को उसकी, रक्षा करता धर्म यहाँ ।
बिना धर्म के इस जीवन मे, आ सकती है शक्ति कहाँ ।।
मुहणसिह की निर्भयता पर, बादशाह है स्वयं प्रसन्न ।
प्रसन्नता या अप्रसन्नता, रह सकती है कब प्रच्छन्न ।।

अकारण-दण्ड भोग

एक बार इस मुहणसिंह को, मिला अकारण कारावास ।
कारण कौन पूछने जाए, बड़े बादशाहों के पास ॥
कल का और आज का अन्तर, करता मन को क्या न दुखी ।
किन्तु मुहणसिंह श्रावक जी है, अन्तर मन से पूर्ण सुखी ॥
हाथों पावों में बन्धन है, फिर भी मन मे है आनन्द ।
इस आनन्द-प्राप्ति पर, कोई लगा नही पाता प्रतिबन्ध ॥

जेल में भी धर्म

उभयकाल के प्रतिक्रमण का, नियम निभाता नित्य वहाँ ।
मैं आत्मा हूँ, मैं सच्चा हूँ, खेद और भय मुझे कहाँ ? ॥
स्वर्ण टाँक का लोभ दिखाकर, जेलर से सुविधा पाता ।
धन के सम्मुख नर क्या, सुर भी एक बार तो रुक जाता ॥
ऐसे करते एक मास की, सजा हो गई सकल समाप्त ।
विगत प्राप्ति से बादशाह के, मन में हुआ हर्ष भी व्याप्त ॥
भरी सभा में सम्मानित कर, पुन. दिया है स्थान वही ।
दृढधर्मी तू सत्यनिष्ठ है, इसमें शका नही रही ॥

सत्य-परीक्षण

चुगलखोर ने चुगली खाई, जाकर बादशाह के पास ।
मुहणसिंह के पास अवस है, स्वर्ण टक ये लाख पचास ॥
सांच झूठ का पता चलेगा, अगर जांच हो जाएजी ।
पूछा जाए इतना सोना, आप कहाँ से लाए जी ॥
बादशाह के पास न इतना, जितना धन है उसके पास ।
पता न पड़ता अभी आपको, होता यथा राज्य का ह्रास ॥
बादशाह ने मुहणसिंह को, बुलवाया पूछा तत्क्षण ।
स्वर्ण टंक कितना है बोलो, बोलो सोना कितना मण ॥

कल बतलाऊँगा

सुनकर मुहणसिंह यूँ बोला, कल कह दूँगा सारा हाल ।
धन से ज्यादा करता हूँ मैं, मेरे सतव्रत की संभाल ।।
स्वर्ण टांक है लाख चौरासी, आंक सामने आया स्पष्ट ।
सत्याश्रयी पुरुष ने किंचित, नहीं मानसिक पाया कष्ट ।।

कोट्याधीश का पद

वह कहता पच्चास टांक है, यह कहता चौरासी टांक ।
इसने नही छुपाया अपना, सही बताया सारा आंक ।।
सोलह टाँक और दे सोना, करदो कोट्याधीश इसे ।
धन से बढकर धर्म नियम, सत-व्रत है प्यारा प्राण जिसे ।।
गजारूढ कर घर पहुँचाने, बादशाह खुद जाता है ।
कोडी ध्वज का ध्वज उस घर पर, लहर-लहर लहराता है ।।

सारांश और शिक्षा

नियम न छोड़ा, सत्य न छोडा, मुहणसिंह का पढो चरित्र ।
ऐसे पुरुषो से ही होते जाति-धर्म श्री संघ पवित्र ।।
प्रामाणिक पुरुषों के द्वारा, शोभित होता जैन समाज ।
क्या ही अच्छा हो, यदि हो तो, मुहणसिंह सम श्रावक आज ।।
अमर गच्छ का स्वच्छ गगन तल, तारक गुरुवर सूर्य समान ।
पुष्कर मुनि पर गुरुचरणों की, पड़ी रश्मियां अव्यवधान ।।
जोधाणे में, सिंहपोल मे, रचा गया है यह आख्यान ।
दो हजार उनतीस वर्ष का, है यह वर्षावास प्रधान ।।
जनता ने भी धर्म-ध्यान का, लाभ उठाया अतिभारी ।
पुष्कर मुनि होती आई है, कथनी से करणी प्यारी ।।

35

दुष्टता का व्यवहार

राधेश्याम

नहीं छोड़ता दुष्ट दुष्टता, उसका ऐसा बना स्वभाव ।
गिरि-शिखरों पर सड़को में ज्यों, पाये जाते बड़े घुमाव ।।

मोर मधुर बोला करता है, अहि को किन्तु निगल जाता ।
भले नली में डालो पर क्या, श्वान-पुच्छ का बल जाता ?

तलो तैल मे भले महल में, गंध प्याज की कब जाती ।
मार्जारी के मन में मूषक-गण पर दया नही आती ।।

छलता-खलता से चलता, टलता कभी न किसी से वो ।
उदाहरण धृतराष्ट्र स्वयं है, सुनो प्रेम से सुनलो लो ।।

महाभारत के पश्चात्

हुआ समाप्त महाभारत जब, कौरव-वंश प्रणष्ट हुआ ।
गांधारी-धृतराष्ट्र उभय को, सबसे ज्यादा कष्ट हुआ ।।

क्यों हम दोनों जीवित है बस, अच्छा था यदि मर जाते ।
सुनने पड़ते गीत न हमको, भले-बुरे जो नर गाते ।।

किया भीम ने युद्ध भयंकर, मारा गया सुयोधन-रत्न ।
उसका बदला लेने का अब, करना मुझको नया-प्रयत्न ।।

दोहा

हरि से सन्देश

दिया दूत के साथ में, श्री हरि से सन्देश ।
इच्छा यह धृतराष्ट्र की, पूरी करे विशेष ।।

[तर्ज—चुपचुप खड़े हो]

भीम से मिला दो ऐसे, धृतराष्ट्र बोला है।
प्रेम करवादो, मैंने दिल-द्वार खोला है···॥
युद्ध में तो चार-चाँद भीम ने लगा दिये।
कायरों को गीदड़ो को, रण से भगा दिये॥
उसके सुदर्शनों के लिए दिल डोला है···।
मुझे कुछ रज है न, पुत्र मर जाने से॥
मुझे तो प्रसन्नता है, रण-तर जाने से।
भीम बडा भारी योद्धा, कहीं नहीं भोला है···॥

राधेश्याम

हरि की दूरदर्शिता

प्रेम भरा सन्देश श्रवण कर, हरि ने कपट पिछान लिया।
अन्धे की इस कूटनीति पर, गहराई से ध्यान दिया॥
कहा दूत से सुनो, भीम से, तीन दिनो के वाद मिले।
सभी चाहते है हम प्यारे, प्रेम-सुमन क्यों नही खिलें ?॥
अभी भीम श्रम-रण से पीड़ित, करता है आराम जरा।
केवल काम काम क्या देता, आवश्यक विश्राम जरा॥
लौटा दूत समय निश्चित कर, हर्षित है धृतराष्ट्र स्वयं।
किसको निज कौटिल्य - कला पर, आया करता नही अहं॥

रक्षा का उपाय

मूर्ति भीम की सप्तधातुमय, परम मनोहर बनवाई।
स्वय भीम ही आया ऐसे, लगता जब प्रतिमा आई॥
दिन जाते क्या देर बताओ, दिवस तीसरा अब आया।
श्री धृतराष्ट्र भीम से मिलने, को आयेंगे कहलाया॥
स्थान, समय, विधि तय होने पर, आये श्री धृतराष्ट्र वहां।
बड़े प्रेम से बोले—मेरा प्यारा योद्धा भीम कहाँ ?॥

मूर्ति का चूर्ण

लो, यह भीम खड़ा है मिल लो, भरो बांथ में इसे सहर्ष ।
स्पर्शन से ही जाना जाता, प्रेम-प्राप्ति का चरमोत्कर्ष ॥
एक लाख हस्ती का बल है, तन में मन, में मैलापन ।
केवल वाणी से करते है, विज्ञ भीम का वर्द्धापन ॥
बड़ी खुशी है आज मुझे मैं, जोकि भीम से मिलता हूँ ।
मिलता हूँ क्या ? रश्मि-स्पर्श से, सूर्यमुखी सम खिलता हूँ ॥
बाँहों में भर भीम-मूर्ति को, बल से चूर्ण बना डाला ।
टुकड़े-टुकड़े हो जाता ज्यों, गिरकर मिट्टी का प्याला ॥
जोर जोर से शोर मचाकर, सेना बोली पाप हुआ ।
भरा हुआ था जो कुछ दिल में, बाहर अपने आप हुआ ॥

दोनों खुश है

चला गया धृतराष्ट्र समझता, मैंने बदला लिया निकाल ।
चक्षुहीन ने उसे न समझा, जो खेली श्रीहरि ने चाल ॥
बचा भीम हरि की प्रतिभा से, छल का छल पर हुआ प्रहार ।
मितंपची मानव क्या बनता, धन होने पर भला उदार ॥
दुष्ट दुष्ट ही रहता है बस, इसका है सारांश यही ।
पुष्कर मुनि की इस कविता का, हो मूल्यांकन सही-सही ॥

☆

36

भौतिक सुख में सार नहीं

नीरे घृत वा सिकतासु तैल, नावापि केनापि कृतश्रमेण ।
कष्टैकपात्रे भववारपात्रे, सुख यदन्वेषयसे विचित्रम् ॥

[तर्ज—जिया बेकरार है]

चाहे कितना पेल तू, रेत मे से तैल तू ।
पायेगा न पायेगा, हो जायेगा फैल तू··· ॥
जो जिसमें हो वही वस्तु नर, पाया करता उद्यम से ।
जिसका होता उदय-काल जब, वही प्राप्त हो क्रम क्रम से ॥
तेरे से बढ-चढकर कितने, बुद्धिमान नर हुए यहां ।
उन ने भी तो तैल रेत से, नही निकाला कभी यहाँ··· ॥
तेरे से वह ही होगा जो, होगा होने वाला काम ।
काम नही होगा तो होगा, तेरा जीते जी बदनाम··· ॥
मूर्ख नृपति की सुनो कहानी, जिसने पिलवाई बालू ।
पुष्कर मुनि के प्रवचन में है, ज्ञानामृतधारा चालू ॥

राधेश्याम

राज सभा में वक्तव्य

उद्धत तरुण आग्रही नरपति, महामूर्ख इक अविवेकी ।
की न कभी पर जिसने देखी, सुनी न जीवन में नेकी ॥
बोला राजसभा में ऐसे, करना मुझको ऐसे काम ।
जो न किसी ने किये आज तक, करूँ अमर मै मेरा नाम ॥

मै आकाशी कमल उगावूं, जल का दीप जलाऊँ मै।
खेतों में मोती डलवाकर, मोती ही निपजाऊँ मै॥
बालू रेत नहीं की इसमें, बीस घानियाँ बिठलाऊं।
तैल निकलवाऊं इसमें से, नया काम कर दिखलाऊ॥

लोगों का विनय

बोले लोग—हुजूर आपका, श्रम जायेगा व्यर्थ सकल।
मूर्ख मनुष्यों के ही मन में, उपजा करती व्यर्थ अकल॥
राजा बोला—तुम क्या जानो, पिलवा डालो सारी रेत।
बोओ अभी बिना मौसम का, एक नया मोती का खेत॥
मन में सभी लगे है हँसने, चले पैलने बालू रेत।
बोले कृषक किसी ने देखा, सुना उगा मोती का खेत॥
मिले न मोती, तैल न निकला, गया निरर्थक श्रम सारा।
पुष्कर मुनि कब टूटा करता, प्रकृति वाला क्रम प्यारा॥

[तर्ज—दूर कोई गाये]

उपनय

नाम का संसार है, नही कुछ सार है।
आगम सुनाता हो, समझ में आता हो··· ॥
दुनिया की माया है, बादलों की छाया है।
मूर्ख धोखा खाता हो···समझ में आता हो॥
भोग सारे रोग है, योग में वियोग है।
भोगी घबराता हो, समझ में आता हो॥

जो न अपनाये धर्म, जो न त्यागे बुरे कर्म ।
वही पछताता हो, समझ में आता हो ॥
तारक शिष्य पुष्कर गाये, सविधि से समझाये ।
पाये सुखसाता हो, समझ में आता हो ॥

□

37

काल का असर

राधेश्याम

द्रव्य क्षेत्र का काल भाव का, बहुत बड़ा रहता सम्बन्ध।
इसीलिए ही कर्मबन्ध में, बंधता चार प्रकारी बंध ॥

न्यूनाधिकता रहती आई, द्रव्यो के परिमाणों से।
इसे पुष्ट करने को जाएे, क्यों शास्त्रीय प्रमाणों से ॥

समय बड़ा बलवान बली क्यों, बतलाते अर्जुन के बाण।
कायाबल के बिना प्रयोग न, कर पाते हम कोई प्राण ॥

मति समयानुसारिणी होती, इसमें संशय नही कही।
कही जरूरत क्या जाने की, देखा जाता स्पष्ट यही ॥

प्रकृति पर काल

शीतकाल होने पर कैसे, चल सकता है वायु गरम।
वृद्ध काल में चर्म अस्थि कब, रहते नर के परम नरम ॥

उष्ण काल में कही हिमालय, पर क्या बर्फ जमा होती।
नही पूर्णिमा के अवसर पर, देखी यहाँ अमा होती ॥

ऋतु पकने से पहले क्या फल, भर देते टहनी की गोद।
वैर-काल पकने से पहले, शत्रु न ले सकता प्रतिशोध ॥

उदयकाल में ही कर्मो का, पूर्ण उदय होता आया।
भव स्थिति पकने तक आत्मा ने, क्या न सदा गोता खाया ॥

काल-लब्धि का ज्ञान चाहिए, इसीलिए यह पढ़ो कथा।
कथानकों के द्वारा चिन्तन, देने की भी एक प्रथा॥

राजा का प्रश्न

एक वृद्ध माली राजा को, लाकर देता मालाएँ।
बिना शिक्षको के कब चलतीं, पूर्ण व्यवस्थित शालाएँ॥
एक दिवस नरपति ने उससे, सुन्दर प्रश्न किया ऐसा।
किस राजा के समय आपने, देखा कहो समय कैसा ?॥

[तर्ज—पंछी बावरिया]

सत्य सुना दो हाल के, वुढ्ढे माली जी।
जो पूछा गया सवाल के, वुड्ढे माली जी॥
पिता पितामह अथवा मेरा, किसका अच्छा समय घनेरा।
कह देना तत्काल के, वुढ्ढे माली जी…?॥

माली का विराग

जाने दो भूनाथ, यों बोला माली जी।
समय-समय की वात, है सदा निराली जी…॥
सत्य सत्य सुना दूँ किस्सा, नही झूठ का इसमें हिस्सा।
जो बीती अपने साथ, यो बोला माली जी…॥
पर-बीती न बात को कहना, अपने परतो कसते रहना।
यह सत्य सही साक्षात्, यों बोला माली जी…॥

[तर्ज—चुपचुप खड़े हो]

दादा जी के राज्य में, लगा था एक मेला जी।
मेलों मे ही होती आई, देखो ठेलम-ठेला जी…॥
भीड़ थी अपार नर-नार घने आये थे।
साथ में निज बालकों को, गोदी में वे लाये थे॥
किसे न सुहाता बोलो मेला और खेला जी…॥

सज्जनों की दुर्जनों की, होती पहचान क्या।
होता क्या न आने का बस, दोनों का वह स्थान क्या ।।
मेलों मे ही डाला जाता कोई सा झमेला जी···।।

कोई कुछ खा रहे हैं, कोई कुछ पीते हैं।
कोई वेचते है कोई, लेते नए फीते हैं।।
कोई कोई खरचता न गाँठ का अधेला जी···।।

कोई गाता, कोई आता, कोई घर जाता है।
कोई खुश होता कोई, आके पछताता है।।
कोई नए वस्त्र वाला कोई पहने मेला जी···।।

कुछ नर-नारी सिवा, नजर न आता है।
आओ यहाँ आओ कोई, हाथों से बुलाता है।।
कोई गुरुदेव है तो कोई चेली-चेला जी···।।

रोता कोई बच्चा उसे, ढूँढती है माता जी।
सूचनाएँ देने वाला, धन्यवाद पाता जी ।।
खुशियों का स्वर गूंजा गगन मे फैला जी···।।

राधेश्याम

मेला हुआ समाप्त शाम को, लगे लौटने लोग सभी।
बहुत बड़ी दुर्घटनाएं भी, घट जाती है कभी कभी ।।

स्त्री रोती थी

बिछुड़ी हुई खड़ी बाला इक, रोती थी आँखे भर-भर।
कोलाहल में सुना न जाता, बहुत दूर तक रुदन-स्वर ।।

उसके तन पर स्वर्ण-भूषण, मन पर दूषण एक नही।
यौवन की पड़ती छाया ने, खोने दिया विवेक नहीं॥
मन मे भय छाया तन-धन का, परिजन का जब साथ नही।
क्योंकि अकेली स्त्री की सुनता, कोई सच्ची बात नहीं॥

मानवता का सम्बन्ध

हँसकर निकल चला कोई नर, कोई खेद प्रगट करके।
कौन बचाता है मरते को, बतलाओ खुद ही मर के॥
सुनो ध्यान दे, राजन् जब मैं, निकला था हो उसके पास।
मैंने कहा सुनाओ बेटी !, मत रोओ मत बनो उदास॥
मत घबडाओ, पता बताओ, पहुँचा दूँगा स्थान तुम्हे।
इन मेलों में आने का बस, हो जायेगा ज्ञान तुम्हें॥

पिता के पास

उसे हुआ विश्वास साथ मैं, चला स्वयं पहुँचाने को।
परिणामो से परखा जाता, राजन् ! यहाँ जमाने को॥
उसके पूज्य पिताजी के घर, पर जाकर मैं आया छोड़।
रक्षक अगर जागते हो तब, चोर नही पाता फल तोड़॥
हर्षित हुए पिता माताजी, देने लगे इनाम मुझे।
एक हजार मोहरे रखकर, करने लगे प्रणाम मुझे॥
मैं बोला, मैंने यह मेरा, अदा किया केवल कर्त्तव्य।
मानवता की सेवा का यह, अवसर पाया एक अलभ्य॥
स्वाभिमान था अपने मन मे, धन्यवाद ले घर आया।
घर वालों ने कहा आज ही, ऐसा ऊचा नर पाया॥

जब यह घटना घटी आपके, पूज्य पितामह का था राज्य ।
तब था मेरे लिए पर-स्त्री, पर-धन दोनों मन से त्याज्य ॥

अतीत और वर्तमान

पलटा समय, राज्य भी पलटा, मन ने भी पलटा खाया ।
बीती हुई इसी घटना पर, मन मे पछतावा आया ॥
मोहरे एक सहस्र गँवाकर, व्यर्थ मूर्खता की मैंने ।
वह देता था हाथ जोड़कर, भला नहीं क्यों ली मैंने ॥

आज का प्रभाव

आया समय आपका उससे, आगे बढने लगे विचार ।
विना काल के फैल न सकता, युगानुचारी स्वेच्छाचार ॥
आज सोचता उस लड़की को, जो रख लेता मेरे पास ।
कौन पूछने वाला था वस, नही किसी को आती वास ॥
स्त्री होती, बच्चे भी होते, होते घर पर सुख सारे ।
उलटी बातें चित्त सोचता, जो आया अवसर हारे ॥

तुलनात्मक दृष्टिकोण

समय कौन-सा अच्छा है अब, भूपति आप विचार करे ।
समय प्रभाव दिखाता ही है, कितना क्यों न प्रचार करे ॥
मे हूँ वही, वही मानस है, क्यों चिन्तन ऐसा उभरा ।
समय वुरा वतलाया जाता, मानव होता आप वुरा ॥
समय नही बदला जा सकता, समय बनाता है हम को ।
समय विना क्या सावित्री भी, ललकारा करती यम को ॥
समय देखकर बरतेंगे हम, आत्म-शान्ति सुख पायेंगे ।
अगर समय से विमुख रहे तो, वेवकूफ कहलायेंगे ॥

कथा का अन्त

माली का अनुभव सुन करके, हर्षित बहुत हुआ भूपाल ।
पुष्कर मुनि पर तारक गुरु की, सदा रही शुभ दृष्टि विशाल ।।
श्रोता जनों ! ग्रहण कर शिक्षा, अपना अन्तर करो पवित्र ।
जीवन की प्रत्येक विधाएँ, होती हरदम क्या न विचित्र ।।